आनन्द गीता

जग में जितने गीत मधुर हैं, सुन्दर कोमल स्वर है जिनका ।
उन सब में यह गीत मधुरतम, जिनको गाती आनन्द गीता ।।

श्री स्वामी शिवानन्द

आनन्द गीता

— लेखक —

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

प्रकाशक :

डिवाइन लाइफ सोसायटी,

पो० शिवानन्दनगर,

जिला-टिहरी-गढ़वाल, (यू० पी०), हिमालय

१९७४

डिवाइन लाइफ सोसायटी के लिए श्री स्वामी कृष्णानन्द जी द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा योग-वेदान्त फारेस्ट एकैडेमी प्रेस, शिवानन्दनगर, जिला टिहरी-गढ़वाल (उ०प्र०), हिमालय में मुद्रित।

प्रथम (हिन्दी) संस्करण — १९५२
द्वितीय (हिन्दी) संस्करण — १९७४
(४००० प्रतियाँ)

दिव्य जीवन सङ्घ के हितार्थ अमृतसर के
श्री पन्ना लाल जी,
की उत्कृष्ट सेवाओं के उपलक्ष में प्रकाशित।
(२५० प्रतियाँ)

- : प्राप्ति-स्थान :—

शिवानन्द पब्लीकेशन लीग,
डिवाइन लाइफ सोसायटी,
पो० शिवानन्दनगर,
जिला—टिहरी-गढ़वाल, (उ० प्र०),
हिमालय। २४९१९२

ॐ

सादर समर्पित

उनके ही चरणों पर

जिनके चरण अविरल-गति से पथ पार कर रहे हैं

प० पू० श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी

दो शब्द

'**आनन्द गीता**' सर्वप्रथम सन् १९५२ में हिन्दी में प्रकाशित की गयी थी। पुस्तक का अच्छा प्रचार हुआ, कुछ ही महीनों में प्रथम संस्करण वितरित हो गया। इस तरह पुस्तक घर-घर घर कर गयी।

कुछ कठिनाइयों के कारण पुस्तक का द्वितीय हिन्दी संस्करण, पाठकों की सेवा में, शीघ्र प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। यह नवीन संस्करण उनकी चिर-प्रतीक्षित माँग को पूरा करेगा। इस पुस्तक में अनुवाद के साथ-साथ, आंग्ल संस्करण को सम्पादित कर, '**आनन्द गीता**' में भावों को पूर्ण बनाने का भी प्रयत्न किया गया है।

हमें पूर्ण आशा है कि यह पुस्तक हिन्दी-क्षेत्र की आवश्यकता की पूर्ति करेगी।

प्रकाशक

रूपान्तर

'आनन्द गीता' परमानन्दमय जीवन की कुञ्जी है; आज के बहुकार्यरत मनुष्य के लिए इसके आदेश सफलता और बहुत अंशों तक, प्रेरणा का कार्य करते हैं।

आज जीवन में तामसिक वृत्ति और राजसिक कार्यपरायणता का चमत्कार प्रबल है। सात्त्विकता जनपथ से दूर हो चुकी है। सर्वत्र वासनाओं का ही आधिपत्य है। मनुष्य पवित्रता से हटता जा रहा है।

ऐसे समय में मनुष्य को सत्पथ की ओर ले जाने की आवश्यकता है; पर कौन, इस विशाल जगत् में, प्रत्येक जीवन को सत्पथ की ओर ले जा सकेगा ?

'आनन्द गीता' उत्तर देती है—"मैं ले जाऊँगी, मेरे साथ आओ; जहाँ कहूँ, वहाँ चलो। मैं तुम्हारे मार्ग-बन्धु के तुल्य हूँ। मैं तुम्हें आनन्द के मार्ग से ले चलूँगी।"

प्रार्थना है कि **'आनन्द गीता'** आगे-आगे हो, हम साथ-साथ चलते रहें; भूले-भटकों को भी, जहाँ वे मिलें, साथ-साथ लेते जावें। **'आनन्द गीता'** हमें पवित्र मार्ग से ले चले। उसकी अमृतवती वाणी से हमें सान्त्वना मिलती रहे और जीवन का श्रम मिट जाय।

जिनके चरण, अविरल-गति से, आगे बढ़ते जा रहे हैं, उनके ही चरणों के पास, पर आगे-आगे, आनन्द गीता भी चल रही है।

अनुवादक

विषय-सूची

विषय पृष्ठ.संख्या

पञ्चम अध्याय : राजयोग

षष्टम अध्याय : तदितर इतरः

सप्तम अध्याय : ज्ञानयोग की व्याख्या

उपसंहार

परिशिष्ट

जाननी है।
और राजनगर में सब कुछ पहले की तरह चलने लगा।

प्रथम अध्याय

दिव्य जीवन का सही अर्थ क्या है ?

दिव्य जीवन

दिव्य जीवन से क्या तात्पर्य है ? मनुष्य की पाशविकता को दूर कर, उसको दैवी गुणों से परिपूर्ण कर देना, दिव्य गुणों को अपने दैनिक जीवन में–मन, कर्म और वचनों द्वारा प्रकाशित करना·········दिव्य जीवन के सही अर्थ को प्रकट करता है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे स्वामिन्, मुझे दिव्य जीवन के सही अर्थ से परिचित कराइए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

वत्स, परमात्मा में समाश्रित जीवन को दिव्य जीवन कहते हैं। सदा अपनी आत्मा में रमते हुए जीवन बिताने को दिव्य जीवन बिताना कहते हैं।

प्रभु से प्रार्थना करो। उनके नामों का निरन्तर जप करते

रहो। सदा परमात्मा का ही चिन्तन करते रहो। भगवद्-ध्यान करते रहो। यही दिव्य जीवन का मार्ग है।

सदा सच बोलो। मृदुभाषी बनो। सप्रेम व्यवहार करो। किसी की हिंसा न करो। ब्रह्मचारी बनो तथा सब रूपों में परमात्मा को ही व्यक्त जानो। यही दिव्य जीवन की परिभाषा है।

श्रद्धा, भक्ति और आत्म-निवेदन द्वारा अहंता और ममता को मार्ग से हटा दो; इस प्रकार तुम परमात्मा के समीप होते जाओगे। यही दिव्य जीवन का मार्ग है।

गीता, उपनिषद्, रामायण, भागवत, योगवाशिष्ठ, कुरान, बाइबिल, जेन्द अवेस्ता का स्वाध्याय करो और उनमें कहे गये उपदेशों के पालन का यथासाध्य प्रयत्न भी अवश्य करो। यही दिव्य जीवन है।

परमात्मा की व्यापकता का सदा अनुभव करो। सब से प्रेम करो। सब की सेवा भी। दयावान् बनो, सहनशील, धीर, विनम्र और परिशुद्ध-हृदय बनो। क्षमाशीलता का अभ्यास करो। यही दिव्य जीवन का सच्चा अर्थ है।

काम-वासना, आलस्य और क्रोध को दूर कर अपने अन्दर सत्त्वगुणों का विकास करो। यही दिव्य जीवन है।

दैवी सम्पत् का संग्रह करो। सीधे बनो, धीर बनो। शान्ति, उदारता, दयावन्त, आत्मसंयमी और निरभिमानी बनो। यही दिव्य जीवन है।

हानि और लाभ, निन्दा और प्रशंसा, आदर और अपमान, सफलता और विफलता—इन सभी अवस्थाओं में समान रहना सीखो। मन चञ्चल न होने दो।

शरीराध्यास त्याग दो। स्त्री-पुत्र, धन-सम्पत्ति का मो
भी त्याग दो। अपने को सर्वव्यापक, विभु और अमर पर
मात्मा से अभिन्न जानते हुए शान्तिपूर्वक जीवन बिताओ।

धर्म क्या है ?

धर्म-पालन द्वारा जीव और ईश्वर में एकता की स्थापना हो जाती है। आत्मज्ञान ही सच्चा धर्म है। सभी धर्मों के मूलभूत सिद्धान्तों में एकता है। धर्मों की विचित्रता अनिवार्य है। विश्व-धर्म का अर्थ है सभी प्राणियों को अभयदान देना।

मोक्षप्रिय ने कहा—

स्वामिन्, मुझे धर्म की व्याख्या समझाइए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

हे वत्स, धर्म आत्मज्ञान का मार्ग दर्शाता है। धर्म जीव और ब्रह्म को अद्वैत-सूत्र में एकाङ्कित करता है। सच्चा धर्म मन और इन्द्रियों से परे है। सच्चा धर्म है अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाना। धर्मरहित जीवन ही मृत्यु है।

सभी धर्मों के मूलभूत सिद्धान्तों में एकता है। भेद तो नाममात्र के हैं, मौलिक नहीं। धर्मों का निर्णय करते समय अलग-अलग धर्मों को अलग-अलग व्यक्ति के लिए आवश्यक बताया जाता है। अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार मनुष्य विभिन्न धर्मों को चुन लेता है और उनका व्यवहार करता है। अतः धर्मों की विचित्रता और अनेकता असङ्गत नहीं जाननी चाहिए।

धर्म का एक स्वरूप समस्त विश्व को एक सूत्र में पिरोता है। वह प्रेम है। यही वेदान्त का अद्वैत ब्रह्म है। यही विश्व का धर्म है।

संसार के तमाम धर्म हमें यही बतलाते आ रहे हैं कि सर्वत्र एक, शाश्वत, सर्वव्यापक, अमर आत्मा है; वह सर्वशक्तिवान् है और सर्वद्रष्टा है। सभी धर्मों ने उसे स्वयंज्योति और निराकार बतलाया है। सभी धर्म कहते आ रहे हैं; प्रेमपूर्वक सब की सेवा करनी चाहिए; अपने हृदय को निष्पाप कर लेना चाहिए; किसी भी जीव को कष्ट न दो; ब्रह्मचर्य का पालन करो; उदारमना बनो; दयालु स्वभावशील भी; दूसरों की गलतियों को भूल जाओ; सहनशील बनना सीखो; मन और इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखो; सदा परमात्मा का चिन्तन करो; उनके ही ध्यान में अनुरक्त रहो।

सभी धर्म विभिन्न भाषाओं द्वारा भी एक ही विश्व-धर्म का उपदेश देते आ रहे हैं। इसी धर्म के अनुयायी बनो; यही शान्ति का एकैव मार्ग है।

गीता का सार

आत्मा अमर है। इच्छाओं का दमन करो। निष्काम भाव सब की सेवा करो। परमात्मा का ही सतत ध्यान करो। विभूतिमत्ता के दर्शन करो। दैवी सम्पत् संग्रह करो। के बीच भी मन को समान और सन्तुलित रखो। पूर्ण करो। यही परमात्मा के दर्शनों का मार्ग है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे स्वामिन्, मुझे आज गीता के तत्त्व का उपदेश दीजिए। मुझे गीतोपदेश की उत्कट अभिलाषा है।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

आत्मा शाश्वत है, सर्वव्यापक और अमर है। यह तुम्हारी हृदय-गुहा में विराजता है। शरीर-विनाश हो जाने भी यह जीवित रहता है।

सब आशाओं को त्याग कर आत्मा ही में सन्तुष्ट रहो। काम-लिप्सा, भय और क्रोध से मुक्त रह तथा मोहपाश से हटकर, अद्वैत-निष्ठा की प्राप्ति और आत्मा के शाश्वत की अनुभूति करो।

तुम्हारा कर्त्तव्य है कि कर्म करते जाओ। परिणाम सुफल की आशा करना तुम्हारी अनधिकार चेष्टा है। फलाशा से मुक्त रह कर प्रत्येक कर्म करते रहो।

तृष्णा से परिव्रजित, मोहपाश से असंस्पृष्ट तथा अहंता ममता से विमुक्त व्यक्ति ही शाश्वत शान्ति का भागी होता है।

विषयों से उत्पन्न होने वाले आनन्द, सच पूछो तो आनन्द देते ही नहीं। वे तो दुःख के गर्भ हैं। उनका आदि है और अन्त भी। पण्डितगण उनमें रमण नहीं करते।

पद्मासन, सिद्धासन अथवा सुखासन में बैठ कर सिर, ग्रीवा और शरीर को एक सीध में स्थित करो। नेत्र मूँद लो। इन्द्रियों को अन्तर्मुखी कर दो। भ्रू-मध्य में अपनी दृष्टि स्थिर करो। क्रमशः अविचलता की प्राप्ति करो। मन को आत्म-निष्ठ बनने दो। इसके अतिरिक्त और कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

तुम जो कुछ कर रहे हो, जो कुछ खा रहे हो, जो कुछ यजन कर रहे हो, जो कुछ दे रहे हो और जो कुछ तपस्या कर रहे हो, भगवान् की सेवा की भावना से करते जाओ।

हिमालय भी भगवान् है; गङ्गा भी वही है; वही अश्वत्थ वृक्ष है। उसी को मन जानो; शङ्कर, प्रणव और काल भी वही है। वह भूमि कहाँ, जहाँ वह नहीं।

यही अर्जुन ने कहा था, "अनादि और अनन्त हो तुम महाप्रभो! अनन्त आपकी शक्तियाँ हैं, अगणित आपके हाथ हैं। चन्द्र और सूर्य आपके नेत्र हैं। प्रज्वलित पावक के समान आप द्युतिमान् हो, अखिल भुवनों को प्रकाशित करते हुए।"

परमात्मा को वही प्यारा है, जो अपने मन में बुरे विचारों को स्थान नहीं देता; जो सब का मित्र है तथा सब को दया-दृष्टि से देखता है; जिसमें न मोह है और न अहङ्कार; दुःख और सुख तथादिक द्वन्द्वों में जो समान रहता है।

विनम्रता, अहिंसा, क्षमाशीलता, देव-अतिथिपूजन, शुद्धि, आर्जव, संयमशीलता — इन्हें दैवी सम्पत् कहा जाता है। इन

सद्गुणों की सिद्धि पा लेने से मनुष्य ज्ञान की महिमा का अनुभव करने लगता है।

जो व्यक्ति दु:ख और सुख में समान व्यवहार करता है; जिसकी दृष्टि में मिट्टी के ढेले, पत्थर के टुकड़े और स्वर्ण का समान मूल्य है; जो शत्रु और मित्र के साथ एक समान और सभ्य व्यवहार करता है और जो निन्दा-अपमान से ऊपर उठ कर आत्माराम में रमण करता है, कहते हैं कि वह गुणातीत हो जाता है।

यह संसार अश्वत्थ वृक्ष के समान है। इसकी शाखाएं नीचे की ओर हैं और मूल ऊपर की ओर। छन्द इस वृक्ष के पत्ते हैं। गुणों की माया से इस संसार-रूप वृक्ष में नव-जीवन लहराता है। निर्मोहपूर्वक इसका छेदन कर अमरत्व की प्राप्ति कर लो।

सात्त्विक भोजन वीर्य, शक्ति, आनन्द और मङ्गल को जन्म देता है। राजसिक भोजन कड़ुवा, गरम और चटपटा होता है। बासी और सड़े हुए भोजन को तामसिक कहा जाता है।

अपने मन को परमात्मा में लय कर दो। उनके प्रति अगाध भक्ति का विकास करो, उनके चरणों में प्रत्येक कर्म फूल के रूप में चढ़ा दो। उनको प्रणाम करो। तुम निश्चयत: उनकी प्राप्ति कर पाओगे।

सभी उपाधियों को त्याग कर, एकमात्र भगवद्शरण में जाओ। वही आपके रक्षक हैं। दु:खी न होना। वही आपको सब प्रपञ्चों से मुक्त करेंगे।

जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण हैं ज्ञान के रूप में, पार्थ धनुर्धर है भक्त के रूप में, वहाँ निश्चयत: श्री है, वहीं विजय और वहीं भूति का निवास है।

द्वितीय अध्याय

दिव्य जीवन के पथ पर

साधना

अब हम साधना का विवेचन करते हैं। दिव्य जीवन की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने को साधना कहा जाता है। साधना का लक्ष्य है परमात्मा। साधना में अनेकता है और विचित्रता भी। विविध योगों के अनुसार साधना के मार्ग भी भिन्न-भिन्न हैं।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे परम योगिन्, मुझे साधना का उपदेश दीजिए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

विक्षिप्त मन को एक स्थान पर नियत कर, उसको परमात्मा के चरणों में स्थिर करना ही साधना है।

साधना द्वारा जिस वस्तु की प्राप्ति होती है, उसे साध्य कहा जाता है। परमात्मा साधक का साध्य है। जो व्यक्ति साधना का अभ्यास करता है, उसे साधक कहते हैं।

आत्म-संयम साधना है। मन को निर्मल बनाना ही ।
है। एकान्तचित्त होना, वैराग्य का अभ्यास, धारणा और
में अनुरत होना, दिव्य आचार-विचारशील होना, प्रार्थना
तथा कीर्त्तन करना साधना के अङ्ग हैं।

साधना में नियमपरायणता होनी चाहिए। साध
प्रक्रिया होनी चाहिए। साधना में आवश्यकता है उत्साह
साथ-साथ सावधानी, बुद्धिमत्ता, धीरता और लगन की भी

योगों की प्रक्रियाओं के भेदानुसार साधना में अन्तर
जाता है। हठयोगी आसन, प्राणायाम, बन्ध और मुद्राओं
नितान्त अनिवार्य बतलाते हैं। हठयोग के अभ्यास द्वारा
अपनी सुप्त-शक्ति को जगा कर सहस्रार तक ले जाते हैं।

इसी प्रकार भक्त भक्ति के नौ अभ्यास करता है। वह
कीर्त्तन और प्रार्थना करता है। भक्ति-साधना में श्रद्धा, ...
गति को आवश्यक स्थान दिया जाता है।

राजयोगी यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याह
धारणा, ध्यान और समाधि से अवलम्बित आठों अङ्गों
अभ्यास कर असम्प्रज्ञात समाधि में निष्ठित हो जाता है।

ज्ञानयोगी विवेक, वैराग्य, षड्-सम्पत् और मुमुक्षुत्व
अभ्यास करते-करते आत्मा में अनुरत हो जाता है और श्र
मनन और निदिध्यासन द्वारा उस परम पद को प्राप्त क
है।

हे मोक्षप्रिय! सदा साधना करते रहो और इसी जीवन
परमात्मा की प्राप्ति कर लो।

सन्तों का सङ्ग

तों का सङ्ग ही सत्सङ्ग है। सत्सङ्ग से ही मन को परमात्मा
। ओर फेरा जा सकता है। कहते हैं कि एक घड़ी का सत्सङ्ग
ाखों साल की तपस्या से कहीं अधिक महान् है।

ाक्षप्रिय ने कहा—

हे भगवन्, मुझे आज आप सत्सङ्ग में दीक्षित कीजिए।

वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

सन्तों का सङ्ग ही सत्सङ्ग है। सन्तों, साधुओं, योगियों
ौर महात्माओं के सङ्ग में रहा करो। उनके अमूल्य उपदेशों
ो सुन कर उनका पालन करो। यह सत्सङ्ग है।

सत्सङ्ग के विना सांसारिक विचारमग्न मन को परमात्मा
। ओर आमुख नहीं किया जा सकता।

सत्सङ्ग के विना वैराग्य का उदय नहीं होता।

माया नवयुवकों को अनेकों प्रकार से भ्रमित करती रहती
। सत्सङ्ग ही ऐसे नवयुवकों को माया के आक्रमणों से सुर-
क्षित रख सकता है। कहा भी है—

सत्सङ्गत्वे निःसङ्गत्वं निःसङ्गत्वे निर्मोहत्वं।
निर्मोहत्वे निश्चलतत्त्वं निश्चलतत्त्वे जीवन्मुक्तिः॥

सत्सङ्ग से वैराग्य की प्राप्ति होती है। निर्लिप्त व्यक्ति में
माया और मोह कहां? भ्रम को जीतो, मन स्वयं शान्त हो

जायगा और अविचल ब्रह्मतत्त्व की प्राप्ति कर लेगा। अ
साक्षात्कार करो; यही जीवन्मुक्ति है।

सत्सङ्ग मोक्ष के द्वार का प्रहरी है। सत्सङ्ग द्वारा आ
विचार, शान्ति और सन्तोष नामक अन्य तीन प्रहरियों
मित्रता कर सकते हैं। निश्चयत: आप बेखटके मोक्ष के साम्र
ज्य में प्रवेश पा सकेंगे।

एक बार विश्वामित्र और वशिष्ठ के बीच यह विवाद हु
कि तप महान् है या सत्सङ्ग। स्वयं भगवान् ने निर्णय कि
कि एक क्षण का सत्सङ्ग लाखों साल की तपस्या से महत्तर है

भगवान् श्रीकृष्ण ने नारद को सत्सङ्ग की महिमा का उ
देश दिया। अत: वत्स मोक्षप्रिय, सत्सङ्ग के लाभों को
हुए, मोक्ष की प्राप्ति करो।

गुरु की आवश्यकता

रुकृपा द्वारा परिपूर्ण ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सकता । गुरु ही मार्ग की बाधाओं का निराकरण करता है और शिष्य को पतन के मार्ग पर जाने से सदा रोकता है। गुरु साक्षात् ब्रह्म अथवा ईश्वर है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे स्वामिन्, कृपया मुझे गुरु की आवश्यकता बतलाइए। क्या गुरु का होना अनिवार्य है?

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

वत्स, गुरु परमावश्यक है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा है—

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

· गुरु के प्रति उतनी ही भक्ति हो जितनी देवता के प्रति; वही शिष्य उपनिषदों के अर्थ को समझ सकता और सत्य को जान सकता है।

इसी प्रकार छान्दोग्य उपनिषद् ने भी कहा है कि आचार्यवान् पुरुष ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है, "हे अर्जुन, शिष्य के समान गुरु के सम्मुख प्रणाम कर, प्रश्न पूछ और सेवा द्वारा

सत्य को जानने का प्रयत्न कर। वे तत्त्वदर्शी तुझे उस ज्ञान का उपदेश देंगे।

साधारण लौकिक विज्ञान की प्राप्ति के लिए भी गुरु की आवश्यकता है। क्या विज्ञान और क्या गणित, क्या भूगोल और क्या इतिहास—किसी भी विद्या को गुरु के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। प्रत्येक कला की प्राप्ति के लिए व्यक्ति को शिक्षक की आवश्यकता रहती है। तब क्या, सत्य उपदेश प्राप्त करने के लिए गुरु की अनिवार्यता सिद्ध नहीं होती? आध्यात्मिक मार्ग के समान दुर्गम मार्ग को गुरु के आदेशानुसार ही पार किया जाता है।

गुरु आपके मार्ग की बाधाओं का निराकरण करता है; आपकी शङ्काओं का समाधान करता है और आपको दिव्य प्रेरणा से स्फुरित रखता है। छूरे की धार के समान इस मार्ग पर केवलमात्र गुरुकृपा ही आपको आनन्दपूर्वक आगे ले जा सकती है।

क्या याद नहीं है कि श्री शङ्कराचार्य, भगवान् श्रीकृष्ण, श्री राम, श्री रामानुजाचार्य और भगवान् एकनाथ के गुरु थे और उनकी गुरुभक्ति परमोच्च कोटि की थी?

गुरु ब्रह्म है। गुरु का ध्यान किया जाना चाहिए। गुरु-चरणों की पूजा की जानी चाहिए। उनके वचनों को मन्त्रों के समान जानना चाहिए। उनकी कृपा मुक्ति के द्वार खोलती है।

———

धर्म और अधर्म

सत्कर्म को धर्म कहा जाता है और कुकर्मों को अधर्म। धर्म मनुष्य को परमात्मा की ओर आमुख करता और अधर्म उसे सांसारिकता में उन्मत्त कर देता है। अधर्म का अस्तित्व केवल-मात्र धर्म को महिमावान् बनाने के लिए है। अधर्माचारी व्यक्ति को सत्सङ्ग के प्रभाव से सन्त बनाया जा सकता है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे स्वामिन्, धर्म क्या है और अधर्म किसे कहते हैं?

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

जो धर्म है, वह पुण्य है और वही सत्कर्म है। जो अधर्म है, वह पाप है और वही दुष्कर्म है।

धर्म और अधर्म व्यावहारिक अभिवचन हैं। एक काल का धर्म दूसरे काल में अधर्म भी बन जाता है। एक स्थान का धर्म दूसरे स्थान में अधर्म के रूप में भी समझा जा सकता है। एक व्यक्ति के लिए जो धर्म है, वही दूसरे व्यक्ति के लिए अधर्म हो सकता है।

धर्म अभ्युदय का मार्ग है। यह श्रेय के द्वार खोलता है और श्री-विभूति लाता है। अधर्म पतन का रास्ता है। यह मनुष्य को अन्धा बना कर उसे भयङ्कर पाताल में समाश्रित कर देता है।

धर्म परमात्मा की प्राप्ति का उपाय है; अधर्म नरक का।

धर्म आपको सुखी बनाता और पुण्यात्मवान् भी। अधर्म आपको सदा दुःखी रखता है और आपके पापों की गठरी को बढ़ाते जाता है।

धर्म आपको सात्त्विक बनाता है। अधर्माचारी तामसिक गुणों से आवृत होता है।

धर्म आपको दिव्य बना देता है; किन्तु अधर्म आपको पिशाच के समान कर देता है। धर्म आपको शक्ति, ओज, वीर्य, मेधा, प्रज्ञा और सत्प्रेरणा से आपूरित कर देता है। अधर्माचरण से मनुष्य सदा दुःखी, अशान्त और निराश रहता है।

तब अधर्म की सत्ता क्यों है? धर्म की महिमा को महिमान्वित करने के लिए। यदि अधर्म न हो तो धर्म की विशेषता किस प्रकार जानी जाय? अधर्म में एक प्रकार की विशेषता होती है, वह विशेषता प्रतिकूल तट की ओर बहती है। अधर्म की अनुपस्थिति में धर्म का होना निश्चय जानो।

धर्माचारी व्यक्तियों के सङ्ग के प्रभाव से अधर्माचारी व्यक्ति को बदला जा सकता है। शराबी अफीमची के साथ रह कर शराब को छोड़ देता है और अफीम का उपयोग करने लगता है। इसी प्रकार एक अधर्मी व्यक्ति धर्मात्मा के साथ रह कर धर्मात्मा बन सकता है। इतिहास इसका साक्षी है। सत्सङ्ग के प्रभाव से अनेकों व्यक्ति विश्व-विख्यात हो गये, अपने जीवन सफल कर गये।

हे वत्स, धर्मात्मा बन कर सन्तत्व प्राप्त करो।

सुख और दुःख

सुख और दुःख दो प्रकार के अनुभव हैं। इच्छा से सुख का अनुभव होता है और सुख से दुःख का। दुःख को सुख के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है और सुख को दुःख के रूप में। सहनशील बनो। सुख और दुःख केवल माया के खेल हैं।

मोक्षप्रिय ने कहा —

हे स्वामिन्, सुख और दुःख क्या हैं, मुझे समझाइए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं —

मन की दो वृत्तियाँ हैं। लोग उन्हीं को सुख और दुःख के नाम से जानते हैं। दो प्रकार के मानसिक अनुभवों का नाम है सुख और दुःख।

सुख में मन प्रफुल्लित होता है और दुःख में सङ्कुचित।

इच्छा सभी प्रकार के सुखों की जननी है। इच्छाओं के न होने पर सुख का अनुभव नहीं होता। शराबी मद्य की इच्छा के कारण मद्य पीते समय सुख का अनुभव करता है। शराब से परहेज रखने वाला ब्राह्मण शराब का नाम सुनते ही घृणा से भर जाता है, क्योंकि वह शराब की इच्छा से दूर है।

सुख से ही दुःखों का जन्म होता है। यदि तुमको दुःखों से मुक्त रहना है तो सुखों का त्याग कर दो। जब आपको चाय नहीं मिलती, आपको दुःख होता है। चाय पीने से जो आनन्द प्राप्त हुआ, मन उसको याद कर चाय न मिलने पर दुःखी

होता है, अतः इस दुःख से मुक्ति पाना चाहते हो तो चाय की आदत छोड़ दो।

सुख और दुःख व्यावहारिक अभिवचन हैं। मन के अनुसार सुख को दुःख और दुःख को सुख के रूप में बदला जा सकता है।

विषयी जीवन में अनेकों त्रुटियाँ हैं। सन्त-महात्माओं की सङ्गति में रहो। वैराग्य-भावों को जगाने वाला साहित्य सदा पढ़ा करो। वैराग्य के उदय होने पर विषयानन्द दुःख के गर्भरूप भासते हैं।

सहनशीलता का विकास करो। सदा याद रखो कि दुःख के रूप में तुम्हें एक महान् शिक्षा मिल रही है। यदि सच कहूँ तो दुःख के रूप में तुम भगवान् का वरदान ही पाते हो। दुःख मनुष्य की आँखें खोल देते हैं। ठोकर खाने पर आप सावधानी से चलना आरम्भ करते हैं। दुःख ही, जब ज्ञान-चक्षु खुल जाते हैं, सुख के समान दिखलायी देते हैं।

देखो, दूध पीने में कुछ लोगों को आनन्द का अनुभव होता है, किन्तु दूसरों को दूध देखते ही उल्टी आने लगती है। दूध से प्रेम करने वाले को भी चौथा गिलास वमन करा देगा। यदि पदार्थों में ही सच्चा सुख है तो वे शाश्वत रहने चाहिए। क्योंकर विषयानन्द का अन्त होता है? इससे यही सिद्ध होता है कि सुख और दुःख केवल हमारी मानसिक प्रवृत्तियों की विशेषताएं हैं। आम मीठा होता है। क्यों? इसलिए कि हमारे मन ने उसमें मिठास की कल्पना की है।

सुख और दुःख माया की लीला है। विषयानन्द केवल परछाई-मात्र है। मन और इन्द्रियों के धोखे में मत आओ।

मोहमय और चमत्कारपूर्ण विषयों के पीछे दौड़ कर व्यर्थ में अपना समय न गँवा दो। यदि सुख के पीछे भागोगे तो अन्त में दुःख के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं लगेगा। अच्छा तो यही कि सत्य वस्तु की खोज करनी आरम्भ करो। शाश्वत और अमर परमात्मा के चरणों में ही सच्चा सुख खोजो। मन और इन्द्रियों की गति से परे चिर कूटस्थ लीलामय भगवान् की सन्निधि में ही सच्चे आनन्द और चिर सुख की प्राप्ति करो।

हे मोक्षप्रिय, शाश्वत सुख की प्राप्ति का यही एक मार्ग है।

मन की कहानी

मन जीवात्मा और परमात्मा के बीच भेद की दीवार है। मन इस सृष्टि का कारण है। व्यावहारिकतया यही सृष्टि है। ब्रह्मविचार और वासना-क्षय द्वारा मनोनाश करो। आपको आत्मज्ञान की प्राप्ति हो जायगी।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे स्वामिन्, मुझे मन के बारे में कुछ बतलाइए। मन के कार्य-कलाप अत्यन्त रहस्यमय होते हैं। उनका ज्ञान प्रत्येक साधक के लिए आवश्यकीय है। अतः मैं मन के कार्य-कलापों से परिचित होना चाहता हूँ।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

मन आत्म-शक्ति है। इसका जन्म प्रकृति से हुआ है। सोचना और अनुभव करना इसका तत्स्वरूप है।

पाँचों इन्द्रियों से अपना सम्बन्ध स्थापित कर, मन विषयानन्द भोगता है।

जीवात्मा और परमात्मा के बीच एक दीवार है; वह मन है। मन-रूपी यह दीवार नष्ट कर दी जाय तो जीवात्मा परमात्मा एक हो जाते हैं।

मन की पतनोन्मुखी वृत्तियों का दमन किया जाय तो जीवात्मा परम शान्तिमय पद की प्राप्ति करता है।

मन का स्वरूप क्या है? वासना, सङ्कल्प, राग-द्वेष।

इनसे अपने को मुक्त रखो तो मन शून्य के समान अस्तित्वहीन हो जाता है।

मन से सृष्टि का सर्जन हुआ। मनोमात्र जगत् और मनोकल्पित जगत् से यही सिद्ध होता है।

गहरी नींद में मनोलय हो जाता है। तभी गहरी नींद में सृष्टि का स्फुरण भासित नहीं होता।

वैराग्य, विवेक, त्याग और ध्यान से मनोनाश होता है। इन गुणों का विकास कर लेने पर मन का दमन करना अत्यन्त आसान है।

दुःख और सुख के रूप में मन बाहरी विश्व बन जाता है। वैसे तो मन चैतन्य शक्ति है, किन्तु परिणामों की दृष्टि से यह विश्व-स्फुरण का उत्तरदायी हो जाता है।

देखते-देखते मन विश्व-सर्जन और लय कर सकता है। इस मन का दमन करो। वासना-नाश के उपरान्त मन का अस्तित्व नहीं रहता। आत्मा का ध्यान करो। निरन्तर ब्रह्म-चिन्तन करते रहो। चिन्तन करते-करते मन ब्रह्म में रम जायगा। यही आत्मज्ञान है।

——— ——

मन को कैसे जीतें ?

मन पर किस प्रकार विजय पायी जाय ? इच्छा और विचारों को हटा दो। हटाने के लिए जोरदार प्रयोग मत करो। बुद्धि से काम लो। गुरु और भगवान् की कृपा अवश्य चाहिए। योग, ज्ञान, भक्ति और निष्काम्य कर्मयोग द्वारा मन पर विजय पाइए।

मोक्षप्रिय ने कहा—

मन पर विजय पाने के उपाय बताइए। मन अत्यन्त चञ्चल है। यह सदा बन्दर के समान इधर-से-उधर दौड़ता रहता है। मनोजय न होने से जीवन अशान्त हो जाता है।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

हे वत्स, मैं मन पर विजय पाने के उत्तम उपाय बतला रहा हूँ।

मन वासना और सङ्कल्पात्मक है। राग-द्वेष, सङ्कल्प और विकल्प मन के प्रधान गुण हैं। यह अहङ्कार और तृष्णा का खजाना है। अविद्या से इसका जन्म हुआ है।

समस्त इच्छाओं और विचारों का दमन करो; मन स्वयमेव ही अन्तर्लीन हो जायगा।

चञ्चल मन को जीतने के लिए वैराग्य और ध्यान का अभ्यास करो।

मन को जीतने के लिए जोर मत लगाओ। जोरपूर्वक मनोलय करने से आपकी सङ्कल्प-शक्ति क्षीण हो जायगी। बुद्धि

ा कार्य लो और धीरे-धीरे मन को अपने वश में कर लो।

मानवीय शक्ति से मन पर विजय पाना असम्भव है। भगवत्-कृपा और गुरु का आशीर्वाद चाहिए। अतः प्रार्थना करो। भगवान् के चरणों में पूर्ण समर्पण करो। यह निश्चय है कि तुम भगवत्कृपा के अधिकारी बन पाओगे।

योग और ज्ञान के अभ्यास से भी मन पर विजय पायी जा सकती है।

विचार करो कि मैं कौन हूँ। ब्रह्मविचार करो। सर्वव्यापक, अमर, अन्तर्यामी आत्मा का निरन्तर चिन्तन करो। इस प्रकार मन एक लक्ष्य पर केन्द्रित हो जायगा।

भक्तियोग द्वारा भी मन पर अधिकार पाया जा सकता है। राजयोग और ज्ञानयोग की अपेक्षा भक्तियोग सरल है और सफल भी। जप करो। भगवान् का कीर्तन करो। भक्ति का नवविध अभ्यास करना आरम्भ कर दो।

निष्काम्य कर्मयोग से भी मन को अपने वश में किया जा सकता है। कर्मयोग के अभ्यास से मन शान्त हो जाता है; दिव्य ज्योति और दिव्य आनन्द से आपूरित हो जाता है।

मनुष्य की रुचियों में भेद हैं। सब अपनी-अपनी बुद्धि से काम लेते हैं। अतः मन पर विजय पाने के लिए सभी प्रकार के योगों की आवश्यकता है। अपनी रुचि के अनुसार तुम किसी भी योग का अभ्यास आरम्भ कर सकते हो।

हे वत्स, तुम भक्तियोग के अधिकारी हो। तुम्हारे हृदय में भक्तिभाव की प्रधानता है और तुम भावुक भी हो।

सङ्कल्प और उनका दमन

मन सर्वथा सङ्कल्प पर आधारित रहता है। सङ्कल्प से ही संसार का आभास होता है। अपने विचारों को रोको। सङ्कल्पों पर विजय पाओ। परमात्मा का साक्षात्कार करो। लोक-विषयों से सदा उदासीन रहो।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे स्वामिन्, सङ्कल्प और उनके दमन पर कुछ विचार प्रकट कीजिए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

हे मोक्षप्रिय ! सङ्कल्प विचारशक्ति है। मन की क्रिया को सङ्कल्प कहते हैं। मन सङ्कल्प पर ही जीवित रहता है। मन का स्वभाव सङ्कल्प करना है।

तामसिक सङ्कल्पों से दुःखों का जन्म होता है। राजसिक सङ्कल्पों से व्यक्ति लोक-व्यवहारों में बँध जाता है। राजसिक सङ्कल्प जीव को संसार की ओर खींचते हैं। सात्त्विक सङ्कल्पों से सदाचार का जन्म होता है। जीव आनन्द और शान्ति का अनुभव करता है; अपने चारों ओर आनन्द-ही-आनन्द देखता है।

सङ्कल्पों का दमन करो तो तुरन्त ब्राह्मिक आनन्द का सागर दिखलायी देगा। संसार के सही रूप का विचार किया जाय तो यही पता चलेगा कि वह सङ्कल्पों का समूह है।

ङ्कल्पों का नाश ही मोक्ष है। सङ्कल्पहीन चित्त में ब्रह्मा-भावों का उदय होता है।

अपने को सभी प्रकार की इच्छाओं से मुक्त करो। शुद्ध ान द्वारा अशुद्ध मन को निर्मल करो। अब आप सङ्कल्पों का नराकरण कर सकते हैं।

याद रखो कि सङ्कल्पों के नाश के उपरान्त ही आप मोक्ष की प्राप्ति कर सकेंगे। जब तक मन में सङ्कल्प है, तब तक जगत् है और सब कुछ है; पर मुक्ति नहीं।

अतः हे मोक्षप्रिय, सङ्कल्पों के विनाश के लिए कठिन प्रयत्न करो। तुम अमर जीवन में दीक्षित हो पाओगे।

अपने विचारों पर विजय पाओ। तभी सङ्कल्पों का क्षय सम्भव है। सङ्कल्पों के पराभव के उपरान्त ही परम लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है।

अज्ञान से सङ्कल्प की उत्पत्ति हुई। जगत् के पदार्थों पर चार-विमर्श मत करो। लोक-विषय के आनन्द को तुच्छ ामझ कर उदासीन हो जाओ।

एक ही सङ्कल्प बहुत रूपों में पनपता है। ज्यों ही चाय ा सङ्कल्प हुआ त्यों ही चाय, चीनी, प्याले, मेज, मेजपोश, बेस्कुट, फल तथादिक सङ्कल्प मन में उतर आते हैं।

विषय-पदार्थों का विचार करो, भोग-विलास की बातें ोचो। फिर देखो किस दौड़ से सङ्कल्प अपना साम्राज्य सारते हैं।

सङ्कल्प का जन्म प्रथमतः एक छोटे पदार्थ से होता है, एक गण से होता है; किन्तु कुछ काल के उपरान्त सङ्कल्पों की घटा निर्मल गगन को ढक लेती और उस मेघ के कारण

आत्मा का सूर्य छिप जाता है। मनुष्य अपने दिव्य स्वभाव को एकाएक भूल बैठता है। वह बाहरी पदार्थों में ही रम जाता है और अपने को शरीर और इन्द्रियों का तुच्छ समूह मानने लगता है।

यदि प्रयत्नपूर्वक सङ्कल्पों का दमन कर दिया गया तो आप निश्चयतः मोक्ष की प्राप्ति कर सकेंगे।

जिस प्रकार एक धागे में अनेकों मोती पिरोये रहते हैं, और वे सब उसी धागे के आश्रित रहते हैं, उसी प्रकार सङ्कल्प भी एक धागे के समान है, जिसमें सहस्रों विचार पिरोये गये हैं। जब तक इस धागे को नहीं तोड़ लेते तब तक विचारों को क्षत-विक्षत करना सम्भव नहीं है।

हे मोक्षप्रिय, सङ्कल्पों को ध्यान के अभ्यास द्वारा पराभूत कर दो। आत्मा पर ध्यान करते-करते आप अमर और शाश्वत आनन्द की प्राप्ति कर सकेंगे।

अहङ्कार

अहङ्कार का क्या कारण है? अज्ञान; विद्वान् लोग ऐसा कहते हैं। अहङ्कार मनुष्य का प्रबल शत्रु है। अहङ्कार का नाश तभी होता है, जब व्यक्ति को ज्ञान हो जाता है। अपनत्व की भावना का पराभव कर दो। अहङ्कार सात्त्विक भी हुआ करता है; किन्तु यह आपको बन्धननिष्ठ नहीं कर सकता।

तब मोक्षप्रिय ने कहा—

हे स्वामिन्, क्या मैं जान सकता हूँ कि अहङ्कार क्या है?

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

वत्स सुनो! "यह मेरा, यह मेरा"—ऐसी भावना को अहङ्कार कहते हैं। "मैं, मैं"—इस प्रकार की भावना को अहङ्कार का प्रबल रूप माना है। अविद्या के कारण अहङ्कार होता है। मनुष्य के रग-रग में यह अहङ्कार समा जाता है; कोई भी स्थान छूटा नहीं रहता।

अहङ्कार के कारण ही तो मानसिक सन्ताप, खतरे और कर्मपरायणता दिन-प्रतिदिन पनपते जाते हैं। अहङ्कार से प्रबल, मनुष्य का और कोई शत्रु है ही नहीं।

अविद्या अर्थात् अज्ञान के कारण ही मनुष्य को अहङ्कार की भावना आ दबाती है। अहङ्कार के त्याग से दिव्य जीवन का रहस्यमय मार्ग खुलता है।

जब तक अहङ्कार की घटा मनुष्य को छिपाती रहती है,

तब तक इच्छाओं की दामिनी भी दमकती रहती है।

अहङ्कार के कारण मनुष्य को बारम्बार दुःखों का सामना करना पड़ता है। अहङ्कार क्षुद्र है। इसका स्थान जीव का मन है। इसका स्वभाव तुच्छ और हेय है। विवेक की कमी और बुद्धिमत्ता के अभाव में मनुष्य को अहङ्कार आ दबाता है।

राजयोग में कहा है कि मनुष्य को पाँच प्रकार के सन्ताप सदा दुःखित करते रहते हैं। अहङ्कार उनमें एक है। अहङ्कार से ही राग-द्वेष का जन्म होता है।

पुनः कहा है कि जब अहङ्कार के बादल घिर आते हैं, तो ज्ञान का सूर्य उनमें छिप जाता है। जीव अन्धकार में भटकने लगता है।

ज्ञानाग्नि से अहङ्कार की जड़ को भस्म किया जा सकता है।

मन एक वृक्ष है। "मैं-पन" इस वृक्ष का बीज है। मन में अहङ्कार पनपता है तो बुद्धि का जन्म होता है। बुद्धि के पनपने पर सङ्कल्प-रूप शाखाओं का विस्तार होता है।

अहङ्कार के विकारों को मन, बुद्धि तथा चित्त के नाम से जाना जाता है।

यदि इस वृक्ष को निर्मूल कर दो तो यह पुनः नहीं पनप सकता है।

आत्म-ज्ञान अग्नि के समान है। वृक्ष की जड़ सदा के लिए भस्म हो जाती है।

"अहं ब्रह्मास्मि"—मैं ब्रह्म हूँ। यह सात्त्विक अहङ्कार है। यह अहङ्कार मनुष्य को बन्धनगत नहीं करता। संसार-सागर को तरने के लिए सात्त्विक अहङ्कार जहाज के समान है, जो आपको मुक्तिधाम में ले जायगा।

जिस अहङ्कार से आप अपने को यह नाशवान् देह मानते हो, वही अहङ्कार आपको जन्म-मरण के चक्कर में बाँध देता है। आप जन्म-जन्मान्तर आवागमन में पड़ जाते हो। अतः सात्त्विक अहङ्कार द्वारा इसके स्थान की पूर्ति करो और आत्मा के आनन्द में अनन्त काल के लिए मग्न रहो।

शान्ति का मार्ग

एकान्त में शान्ति है। जब मन के कार्य-कलाप नीरव हो जाते हैं, तभी आप असीम शान्ति का अनुभव करते हो। सत्य को शान्ति के साम्राज्य का सिंहद्वार माना गया है। अन्य साधनाओं से आप शान्ति की प्राप्ति कर सकते हो।

मोक्षप्रिय ने कहा—

भगवन्, शान्ति का उपदेश दो।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

अमर आत्मन्, एकान्त में शान्ति है और नीरवता में भी शान्ति है। जब मन के कार्य-कलाप शान्त हो जाते हैं, जब सभी इच्छाओं का पराभव हो जाता है, जब सभी विषयाकार वृत्तियाँ समाप्त हो जाती हैं, तभी तुम परम शान्ति और शाश्वत सुख का अनुभव कर पाते हो।

हे सौम्य, तुम्हारे हृदयान्तर में निवास करने वाला यह आत्मा शान्ति का अधिष्ठाता है। इस आत्मा को कामनारहित हो कर, विवेक और निरन्तर ध्यान द्वारा प्राप्त करो।

हे आत्मसम्राट्, इस परम शान्ति को प्राप्त करने के लिए आपको विनम्र बनना होगा; शुद्ध, क्षमाशील, सहिष्णु, निःस्वार्थ और अहंता-ममतारहित बनना होगा। उदार और दानी बनो।

सत्यशील बनो। सत्य से यह देवपद प्राप्त होता है। सत्य-

शीलता और तपश्चर्यामय जीवन व्यतीत करने वाले सन्तों का सदा स्मरण करते रहो। वे तुमको सद्प्रेरणा देंगे।

आत्म-संयम, आत्म-सुधार और आत्म-संस्कार परम शान्ति की प्राप्ति के लिए अनिवार्य साधन हैं। जितना हो सके, इन सद्गुणों का सञ्चय करते रहो।

धीर बनो। द्वेषभाव को तिलाञ्जलि दे दो। उदारहृदय बनो और महान् बनो। दुःखी व्यक्तियों के प्रति दयाभाव बनाये रहो। उनकी सेवा करो। जो बुरा करता है, उसकी परवाह मत करो। बुरा करने वाले के प्रति उदासीन बनो। सबके मित्र बन कर जीवन यापन करो। इस प्रकार परम शान्ति का आनन्द लो।

कभी न भूलो

निराश न होओ। कठिनाइयों पर विजय पाओ। मार्ग की विफलताओं से सफलता का जन्म होता है। ध्यानपूर्वक और सोच-विचार कर मुँह से बातें बाहर निकालो। अपने विचारों को सदैव पवित्र बनाये रखो। अपनी लगन के पक्के बनो। देना एक प्रकार की कला है। देने से समृद्धि का मार्ग खुल जाता है। गीता का स्वाध्याय करो।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे स्वामिन्, मुझे साधना के कुछ विशेष उपदेश दीजिए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं –

साधना के मार्ग में बाधाएँ आ जाया करती हैं। यह बाधाएँ आपको मजबूत और शक्तिशाली बनाती हैं। अतः बाधाओं का सामना डट कर करो। एक-एक कर उनको जीतो।

दस बार भले ही आप गिर जाएँ, किन्तु निराश न होना। सौ बार भी आपको ठोकर लगे, किन्तु हताश न होना और हजार बार भी आपको मुँह की खानी पड़े, किन्तु निराश न होना। सँभलो और उठो। अपने मार्ग पर वीरतापूर्वक बढ़ते चलो। जीवन की विफलताओं से सफलता के मार्ग पर आसानी रहती है और दुर्गम नदियों पर पुल बनते हैं।

अपनी वाणी पर नियन्त्रण रखो। हरएक शब्द पर ध्यान दो। अश्लील, अशुद्ध और बुरी बातें कभी न बोलो। जिस

वात से दूसरों के दिलों पर चोट पहुँचे, उसे मुँह से निकालो ही नहीं।

बुरे विचारों को मन में घुसने न दो। यदि किसी प्रकार बुरे विचार मन में प्रवेश कर भी जायें तो तुरन्त उन्हें निकाल कर बाहर फेंक दो। अपने मन को पवित्र रखो। तभी आप बुरे विचारों से प्रभावित नहीं हो पायेंगे।

अपनी प्रतिज्ञाओं के अटल पुजारी रहो। धीरतापूर्वक अपनी साधना में लगे रहो। वैराग्य और तीव्र लगन को स्फुरित करने के यत्न करते रहो।

व्यक्तिगत भावना का दमन करो। जो आपकी हानि करने पर तुले हैं, उनको क्षमा प्रदान करो। घृणा के बदले में प्रेम का दान दो। जो आपको बुरा देता है, उसे आप सदा भलाई से सम्मानित करो।

अपनी नीच बुद्धि की आज्ञा का घोर विरोध करो। अपनी देह को अपनी आज्ञाकारिणी दासी बना लो।

यदि आप साधना में उन्नति न भी कर रहे हों तो लगन न छोड़ना। लगे रहो और लगे ही रहो। धीरे-धीरे आप सफलता के निकट आते जाओगे।

दो, दो और निरन्तर दो। देने में प्रेम की भावना का प्रदर्शन होता है। देने से दिल खुलता है और मन साफ होता है। बदले में पुरस्कार की भावना नहीं होनी चाहिए और न अहसान की चाह ही। जहाँ देने के लिए हाथ खुले नहीं हैं, वहाँ परमात्मा के लिए स्थान ही कहाँ रहा? देने से बहुलता और समृद्धि के द्वार खुलते हैं।

लगन के पक्के रहो और साधना में दिलचस्पी से काम लो। आपकी सङ्कल्प-शक्ति को नवीन बल प्राप्त होगा। साधना में सावधानी से काम लेने से साधक को दैवी सहायता प्राप्त होने लगती है।

गीता के सुन्दर श्लोकों का पाठ करते रहो। उपनिषदों से मन्त्र पाठ करो। मन्त्रों का जप भी करो। इन अभ्यासों से आपकी साधना का आधार मजबूत रहेगा और आपके मन को बार-बार दिव्य प्रेरणा मिलती रहेगी।

तृतीय अध्याय

कर्मयोग

कर्मयोग का अभ्यास

कर्मयोग का सार। आत्मभाव अथवा नारायण-भाव से कार्य करो। कर्मयोगी को अनेकों सद्गुणों का सञ्चय करना चाहिए। उचित भाव से सेवा करना कर्मयोग है। कर्मयोग के अभ्यास से साधक दिव्य-विभूति और अद्वैत-भावना में दीक्षित हो जाता है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे स्वामिन्, मुझे कर्मयोग की दीक्षा दीजिए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

निःस्वार्थ भाव से की गयी सेवा को कर्मयोग कहा जाता है। कर्मयोग के अभ्यास से हृदय पवित्र हो जाता है। हृदय निर्मल होने पर दिव्य ज्योति और आत्म-ज्ञान का प्रकाश स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाता है।

कर्म करते रहो; फल की आशा मत करो। कर्त्तापन का अभिमान त्यागो और उपभोक्ता बनने की अभिलाषा भी। यह अनुभव करो कि आप भगवान् के हाथों के खिलौने हैं। वे आपके द्वारा सभी कार्य सम्पादन कर रहे हैं। सफलता और विफलता में समान और शान्त रहना सीखो। कर्मों के बन्धन में कभी न पड़ना। यह कर्मयोग का सार है।

जब आप दूसरों की सेवा करते हो तो यह विचार करो कि आप उनके अन्दर निवास करने वाले भगवान् की ही सेवा कर रहे हो। आपकी आत्मा ही सब में व्यापक है। अतः दूसरों की सेवा कर आप अपनी ही सेवा कर रहे हो। भक्ति और ज्ञान का कर्मयोग से समन्वय करो।

कर्मयोगी के लिए इन सद्गुणों का सञ्चय अनिवार्य है। वे सद्गुण हैं : विनम्रता, आत्म-समर्पण, त्याग, शान्ति, साहस, आत्मनिर्भरता, सत्यशीलता, विश्वप्रेम, दया, उदारता, एकाग्रता और हर अवस्था में युक्तिपूर्वक रहने की कला।

स्वार्थी, आलसी और चालाक व्यक्ति कर्मयोग के अभ्यास के योग्य नहीं है।

कर्मयोगी धीर होता है। वह अपने मार्ग के विघ्नों को साहसपूर्वक पराभूत करता है। उसके पास साहस की विपुलता होती है; वह धीरता के साथ अपने पथ की कठिनाइयों पर विजय पाता है; निराश नहीं होता।

दानशील बनो। बीमारों की सेवा करो। गरीबों को सहायता दो। अपने देश की सेवा में तन्मय रहो। अपने माता-पिता की सेवा करो। किसी समाज-सुधारक अथवा धार्मिक संस्था को अपना सहयोग दो। सद्भावना, सद्विचार और सद्-

साहस के साथ अपने प्रत्येक कार्य करते जाओ। यन्त्रवत् किसी भी कार्य को करना लाभदायक नहीं।

अपने प्रत्येक कर्म को आध्यात्मिकता की कसौटी पर कसो। सद्भावना से कार्य किया जाय तो वह योग हो जाता है और परमात्मा के चरणों में सुन्दर फूल के समान अर्पित किया जा सकता है। कर्मयोग के अभ्यास में भाव का स्थान प्रधान है।

कर्मयोग प्रत्येक प्रकार के मानसिक विक्षेपों को दूर हटाता है। भेद-भाव और वैमनस्य को पराभूत कर, कर्मयोग का अभ्यास, व्यक्ति और समाज को एकता और समानता की ओर प्रेरित और नेतृत्व करता है। कर्मयोग से आलस्य और जड़ता का निराकरण होता है। कर्मयोग से स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन की प्राप्ति भी होती है।

हे मोक्षप्रिय, अपने को कर्मयोग के अभ्यास में संलग्न कर दो।

कर्मयोग की महिमा अपार है, क्योंकि यह मनुष्य को दिव्य चरित्रवान् और अद्वैत निष्ठा-सम्पन्न बना देता है।

अनासक्ति-योग

कर्मफल के लिए जो आसक्ति होती है, वह हेय है। हर प्रकार की आशा का दमन करो। अपने को द्वन्द्वों से निर्लिप्त रखो। सफलता और विफलता में समान और शान्त रहो। आत्म-ध्यान करो। मोह को छिन्न-भिन्न करो। यही अनासक्ति-योग है। यह आपको दुःखों से मुक्त कर देगा।

मोक्षप्रिय ने कहा —

हे स्वामिन्, अनासक्ति-योग का अर्थ क्या है। इस विषय पर कुछ प्रकाश डालिए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं —

किसी पदार्थ अथवा किसी कार्य में मोह-भाव होना आसक्ति के नाम से जाना जाता है। जीव लोक-विषयों में मोहित होकर बँध जाता है। इस प्रकार वह जन्म-मरण के चक्कर में पकड़ा जाता है।

मोह सच्ची मृत्यु है। अनासक्ति में शाश्वत जीवन का रहस्य है।

किसी पदार्थ अथवा कार्य में आसक्ति का न होना अनासक्ति के नाम से जाना जाता है।

वैराग्य और विवेक से आसक्ति का दमन किया जाता है।

विषयी जीवन में अनेकों बुराइयाँ हैं; जैसे जन्म, मरण, जरा, व्याधि, नश्वरता, दुःख, सन्ताप, क्लेश, चिन्ता, भय इत्यादि। इन पर विचार करो। आप अनासक्त बन पाओगे।

संसारी व्यक्ति आसक्ति के बिना कोई कार्य नहीं करते। वे अपने को कर्मफल का उपभोक्ता समझ लेते हैं। यदि वे किसी व्यक्ति को एक गिलास जल भी देते हैं, तो बदले में कुछ-कुछ की आशा करते हैं; धन्यवाद की आशा है उनमें, शंसा और अहसान की भी।

यदि आप कर्मफल की आशा को तिलाञ्जलि दे चुके हैं, ादि आप सदा सन्तुष्ट रहते हैं, यदि आप अपने कर्मों को ागवान् को अर्पण कर रहे हैं तो निश्चयतः आप कर्मबन्धन से ालग रह पायेंगे। कोई भी कर्म आपको बाँध नहीं सकता। र्म करते रहने पर भी आप कर्मों के विपाक से विरक्त रहेंगे; ही अनासक्ति-योग है।

आशाओं पर विजय पाओ, मन पर विजय पाओ और इन्द्रियों पर अपना स्वामित्व स्थापित करो। इस प्रकार कर्म करने पर भी आप अनासक्त बने रह सकते हो।

अपने को द्वन्द्वों से दूर रखो। सफलता में समान और शान्त रहो। घृणा को जीतो। इस प्रकार कर्म करते हुए भी आप कर्मों के विपाक से मुक्त रह सकते हो।

मोह पर विजय पाओ। आनन्दित रहो। आत्म-चिन्तन करो। अब आप परम पद पाने के अधिकारी हो जाओगे।

यह अनासक्ति योग है। इस योग का अभ्यास करो। दिल साफ रखो और इसी जन्म में जीवन के परम लक्ष्य की प्राप्ति कर लो।

चतुर्थ अध्याय

भक्तियोग

भक्तियोग की व्याख्या

भक्तियोग द्वारा भक्त अपने को परमात्मा में एक कर देता है भक्तियोग सब के लिए उपयुक्त है। भक्ति और लोक-तृष्ण साथ-साथ नहीं रह सकतीं। सकाम भक्ति भी कालान्तर निष्काम भक्ति का रूप धर लेती है। पराभक्ति और ज्ञान में भेद नहीं होता है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

महाप्रभो, मुझे भक्तियोग का उपदेश दीजिए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

वत्स ! ध्यानपूर्वक सुनो। परमात्मा के प्रति अनन्य प्रेम को भक्ति कहा जाता है। भक्तियोग के अभ्यास से भक्त अपने को परमात्मा के साथ एकरूप कर लेता है।

प्रार्थना, जप, कीर्तन, स्मरण, पूजन, ध्यान, आत्म-निवेदन—भक्ति योग के अङ्ग हैं।

कुण्डलिनी-योग, राजयोग और ज्ञानयोग की अपेक्षा भक्ति-योग सर्वसाधारण के लिए सुसम्पाद्य है। परमात्मा के नामों का कीर्तन कौन नहीं कर सकता और कौन भक्तियोग के अभ्यास का अधिकारी नहीं ?

भक्तियोग के अभ्यास के लिए सभी वासनाओं का पराभव हो जाना अनिवार्य है। लोक-तृष्णाओं का दमन कर देना चाहिए। अब जाकर भक्ति पनपने लगती है। यदि आप भक्ति और लोकैषणाओं को साथ-साथ रखना चाहो तो असम्भव है। प्रकाश और अन्धकार साथ-साथ नहीं रह सकते; भक्ति और सांसारिकता का साथ कभी नहीं हो सकता।

प्रह्लाद की भक्ति आरम्भ से ही निष्काम थी। उसे परमात्मा के अतिरिक्त किसी भी वस्तु की चाह न थी। ध्रुव की भक्ति सकाम थी। वह राज्य-सम्पदा की आशा से भक्ति-मार्ग-प्रवृत्त हुआ था; किन्तु ज्यों ही उसे भगवान् के दर्शन हुए, वह लोकैषणा से विमुक्त हो गया। सर्वसाधारण सकाम भक्त होते हैं। निरन्तर अभ्यास से सकाम भक्ति, अन्ततः, निष्काम भक्ति का रूप धारण कर लेती है।

भक्तियोग के मार्ग में पाँच प्रकार की भावनाओं से सम्मिलन होता है। वे हैं—शान्त भाव, दास्य भाव, वात्सल्य भाव, सख्य भाव और माधुर्य भाव।

भक्ति के अभ्यास नौ प्रकार से किये जाते हैं। यही नवविधा भक्ति है। वह है—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और अन्ततः आत्म-निवेदन।

भक्त को क्रम-मुक्ति प्राप्त होती है। सर्वप्रथम वह ब्रह्मले की प्राप्ति करता है, तत्परतः महाकल्प के अन्त में वह ब्र के साथ निर्गुण ब्रह्म में लीन हो जाता है।

भक्ति का एक स्वरूप और भी है, वह है पराभक्ति। पर भक्ति और ज्ञान में कोई भेद नहीं। पराभक्त विधियों का दा नहीं रहता। वह सदैव अपने आराध्य को ही देखता है समस्त ब्रह्माण्ड, उसके लिए, परमात्मा का ही स्वरूप बन जात है।

अतः भक्तियोग का अभ्यास करो। भक्तियोग सर्वसाधार के लिए उपयोगी है। तुम भक्तियोग के अभ्यास के लिए उत्त अधिकारी हो।

सङ्कल्पों का नाश ही मोक्ष है। सङ्कल्पहीन चित्त में ब्रह्मानुभावों का उदय होता है।

अपने को सभी प्रकार की इच्छाओं से मुक्त करो। शुद्ध मन द्वारा अशुद्ध मन को निर्मल करो। अब आप सङ्कल्पों का निराकरण कर सकते हैं।

याद रखो कि सङ्कल्पों के नाश के उपरान्त ही आप मोक्ष की प्राप्ति कर सकेंगे। जब तक मन में सङ्कल्प है, तब तक जगत् है और सब कुछ है; पर मुक्ति नहीं।

अतः हे मोक्षप्रिय, सङ्कल्पों के विनाश के लिए कठिन प्रयत्न करो। तुम अमर जीवन में दीक्षित हो पाओगे।

अपने विचारों पर विजय पाओ। तभी सङ्कल्पों का क्षय सम्भव है। सङ्कल्पों के पराभव के उपरान्त ही परम लक्ष्य की प्राप्ति सम्भव है।

अज्ञान से सङ्कल्प की उत्पत्ति हुई। जगत् के पदार्थों पर विचार-विमर्श मत करो। लोक-विषय के आनन्द को तुच्छ समझ कर उदासीन हो जाओ।

एक ही सङ्कल्प बहुत रूपों में पनपता है। ज्यों ही चाय का सङ्कल्प हुआ त्यों ही चाय, चीनी, प्याले, मेज, मेजपोश, बिस्कुट, फल तथादिक सङ्कल्प मन में उतर आते हैं।

विषय-पदार्थों का विचार करो, भोग-विलास की बातें सोचो। फिर देखो किस दौड़ से सङ्कल्प अपना साम्राज्य पसारते हैं।

सङ्कल्प का जन्म प्रथमतः एक छोटे पदार्थ से होता है, एक कण से होता है; किन्तु कुछ काल के उपरान्त सङ्कल्पों की घटा निर्मल गगन को ढक लेती और उस मेघ के कारण

का सच्चा स्वरूप धारण करेगी। यही आवाज आश्चर्यजन प्रभाव को जन्म देती है।

प्रार्थना से पर्वत चलायमान हो जाते हैं। प्रार्थना अनेकों आश्चर्य निहित हैं। प्रार्थना अत्यन्त शक्तिमती है।

जहाँ विचार-विमर्श की पहुँच नहीं, उस प्रदेश में प्रार्थन द्वारा भक्त पहुँचता है। प्रार्थना से भक्त परमात्मा के सायुज्य को प्राप्त करता है।

प्रार्थना से दिल खुलता है और दिल का मैल धुल जाता है। प्रार्थना जीव के हृदय को शक्ति और ओज तथा सात्त्विकता से भर देती है।

प्रत्येक मत की अपनी-अपनी प्रार्थनाएं होती हैं।

नित्यप्रति प्रातःकाल प्रार्थना करो। प्रातःकाल की गयी प्रार्थना अत्यन्त प्रभावोत्पादक होती है। प्रार्थना हर समय की जानी चाहिए। प्रार्थना का अभ्यास ऐसा होना चाहिए कि आप हर समय मन में प्रार्थना का भाव रखें।

धन, सम्पत्ति, यश, स्त्री, पुत्रादिकों के लिए प्रार्थना न करो। ऐसी प्रार्थना हेय है। ईश्वर-दर्शन के लिए प्रार्थना करो। प्रार्थना करो कि आपको परमात्मा का ज्ञान और सायुज्य प्राप्त हो जाए।

प्रातःकाल और रात के समय प्रसिद्ध उपनिषदीय प्रार्थना गाओ। "असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्माऽमृतं गमय"—अर्थात् मुझे असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाओ। आपको शक्ति प्राप्त होगी।

सामूहिक प्रार्थनाओं में महान् शक्ति होती है। सामूहिक प्रार्थनाओं से आध्यात्मिक शक्ति प्रकट होती है, जो सर्वत्र शान्ति का सञ्चार करती है।

गायत्री-जप भी प्रार्थना है; इसमें उपासक बुद्धि को प्रकाश-दान देने की प्रार्थना करता है। यह निष्काम प्रार्थना है।

मृत्युञ्जय-मन्त्र-जप भी प्रार्थना है। यह प्रार्थना शिवजी के प्रति है। "मुझे बन्धन और मृत्यु से विमुक्त करो"—इस प्रकार उपासक भगवान् शिव से प्रार्थना करता है।

हे मोक्षप्रिय, प्रार्थना की शक्ति अतुल है। नित्यप्रति प्रार्थना करो।

———

आत्मसमर्पण और भगवत्कृपा

आत्मसमर्पण करने पर भक्त भगवान् के सायुज्य को प्राप्त कर लेता है। उसका सङ्कल्प भगवत्सङ्कल्प हो जाता है। आत्मसमर्पण पूर्ण हो तो भगवत्कृपा का प्रवाह भी पूर्ण हो उठता है। इस प्रकार भगवत्कृपा का व्याख्यान किया गया है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे योगीराज, अब मुझे यह बतलाइए कि आत्मसमर्पण और भगवत्कृपा का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है ?

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

प्रिय वत्स, आत्मसमर्पण को ईश्वर-प्रणिधान भी कहते हैं। इसका अर्थ है कि भक्त अपने कार्य और उनके फलों को पूर्णतया परमात्मा को अर्पण कर देता है।

उसकी अपनी व्यक्तिगत कामनाएं नहीं रहतीं। उनके उद्गार तो यह हैं : "मैं आपका हूँ, सभी आपके हैं। आपकी इच्छा ही महान् है। आपका न्याय ही महान् है। आप ही मेरे द्वारा सब कुछ लीला कर रहे हो। मैं तो केवल निमित्तमात्र हूँ।"

इस प्रकार भक्त जब अपनी कामनाओं को परमात्मा को अर्पण कर चुकता है, तो उसके सङ्कल्प दिव्य सङ्कल्प बन जाते हैं। वह भगवत्सायुज्य प्राप्त कर लेता है। अपनी व्यक्तिगत सत्ता परमात्मा को अर्पण करने में, कहो, क्या हानि है ?

आत्म-निवेदन और प्रपत्ति भी इसके पर्याय हैं। भक्ति का यही चरम विकास है। वृन्दावन की गोपियाँ, राधा और राज-वंशीय मीरा ने अपना सब कुछ भगवान् कृष्ण के चरणों पर सौंप दिया था। वे ही उनके सब कुछ थे; धन, जन और जीवन।

कठोपनिषद् में कहा है, "जो अपने को पूर्ण समर्पण कर का है, उसी को भगवान् चुनते हैं; उसी के सामने प्रकट होते और उसी को परम ज्ञान का उपदेश देते हैं।"

आत्मसमर्पण की मात्रा होती है। यदि आत्मसमर्पण पूर्ण आ तो भगवत्कृपा भी आपको पूर्ण मात्रा में प्राप्त होगी। गवत्कृपा की प्राप्ति सर्वथा और सर्वदा आत्मसमर्पण की मात्रा र निर्भर रहा करती है।

इस मार्ग में दो विघ्न हैं। वे हैं—अहङ्कार और इच्छाएं। शत्रु लुक-छिप कर आक्रमण करते हैं; अनेकों वेष धारण कर क्तों को सन्तप्त करते रहते हैं।

अतः वत्स, सावधान रहना चाहिए। चारों ओर नजर रते रहो कि कहीं ये दुश्मन किसी रूप में आकर तुमको ठग न लें। जब अवसर मिले, बिना किसी विचार के इन दोनों वैरियों को सदा के लिए दबा दो। तभी तुम सुरक्षित रह पाओगे।

भगवान् की कृपा चाहिए, तभी साधना में बल का आवि-र्भाव होता है। गुरु-कृपा भी भगवत्कृपा ही जानो। भगवान् की कृपा के बल पर ही अनेकों बाधाओं का निराकरण होता है। आप आध्यात्मिक पथ अपना चुके हो, यह भी भगवान् की ही कृपा जानो। आप साधना में काफी उन्नति कर चुके

हैं, यह भी भगवान् की कृपा का प्रसाद है। जब आपके दिव्य-चक्षु खुल जायें तो यह न समझना कि आपकी साधना के बल ही यह सम्भव हुआ—यह तो भगवत्कृपा ही है। जिस दिन परमात्मा की कृपा से उनके दर्शन होंगे, वह भी उनकी कृपा का उदाहरण रहेगा।

पञ्चम अध्याय

राजयोग

राजयोग की व्याख्या

अब राजयोग के आठों अङ्गों का विवेचन होगा। राजयोग और हठयोग की तुलना। राजयोगी मानसिक वृत्तियों पर विजय पाने का प्रयत्न करता है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

गुरुदेव, कृपया मुझे राजयोग में दीक्षित कीजिए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

राजयोग सब योगों का अधिराज है। इसको 'अष्टाङ्ग योग' के नाम से भी जाना जाता है।

राजयोग के आठ अङ्ग हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

राजयोग में अभ्यास और वैराग्य को प्रमुख माना जाता है। अभ्यास और वैराग्य में दृढ़भूमि प्राप्त होने पर मनोलय हो जाता है। अभ्यास और वैराग्य को पक्का करने के लिए अभ्यासनिरत रहना चाहिए।

यम को पाँच प्रकार से सिद्ध किया जाता है। अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह की साधना करने पर यम का अभ्यास सिद्ध हो जाता है।

इसी प्रकार शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान के अभ्यास से राजयोग के नियम-रूप अङ्ग की सिद्धि प्राप्त होती है।
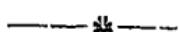
यम और नियम राजयोग की आधार-शिलाएं हैं। जब तक इनका अभ्यास सिद्ध नहीं होगा, तब तक राजयोग में सफलता नहीं मिल सकेगी।

राजयोगी ध्यान को साधना का प्रमुख अङ्ग मानते हैं। हठयोगी आसन, बन्ध, मुद्रा और प्राणायाम पर जोर देते हैं। हठयोगी की साधना का सम्बन्ध देह और प्राण से होता है। राजयोगी की साधना सदा मन से सम्बन्धित रहती है।

इसका अर्थ यह नहीं कि हठयोग और राजयोग में एकता है ही नहीं। हठयोग और राजयोग एक ही सिक्के के दो पहलू हैं; एक ही शरीर के दो दृश्य हैं। जहाँ हठयोग की सिद्धि प्राप्त हो जाती है, वहीं से राजयोग का आरम्भ होता है।

राजयोग के अभ्यास के लिए तीव्र बुद्धि की आवश्यकता है; हठयोग के अभ्यास के लिए स्वस्थ शरीर की।

राजयोग का अभ्यास मनोवृत्तियों पर विजय पाने के लिए अत्यन्त सफल सिद्ध हुआ है। दोनों योग एक ही हैं; दोनों का समन्वय करो तथा अन्य योगों की उचित सहायता लेकर अभ्यास आरम्भ कर दो। तुम निश्चयतः सिद्धि की प्राप्ति करोगे।

---*---

वृत्तियाँ

वृत्तियों का वर्णन। शान्त, घोर और मूढ़ वृत्तियों की विवेचना। वृत्तियों के निरोध से योग का अभ्यास पूर्ण होता है। अपने को वृत्तियों के अधीन मत करो। यही निर्विकल्प समाधि का मार्ग है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे गुरुदेव, मैं पुनः पुनः आपके उपदेशामृत पान कर रहा हूँ। मेरी शङ्काओं का समाधान होता जा रहा है। कृपया मुझे वृत्तियों की दीक्षा दीजिए।

वृत्ति की सहायता से जिस ज्ञान की प्राप्ति होती है, उसे वृत्तिज्ञान के नाम से जाना जाता है। इस ज्ञान और परम ज्ञान में क्या अन्तर है ?

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

मानस-सरोवर में वृत्तियाँ लहर के समान हैं। विशाल मानस-सागर में वृत्ति एक विचार-बिन्दु है, जो लहराती रहती है। वृत्ति एक प्रकार के स्थायी विचार का नाम है।

वृत्ति की सहायता से जिस ज्ञान की प्राप्ति होती है, वह वृत्तिज्ञान है। तत्कथित ज्ञान का इस लोक के पदार्थों से ही सम्बन्ध है। यह सांसारिक ज्ञान है।

वृत्तियों के तीन प्रकार हैं; शान्त, घोर और मूढ़।

जब मन सत्त्वगुणशील होता है, तब उसमें एक प्रकार की शान्त-वृत्ति जागृत होती है। इस वृत्ति के जागते ही व्यक्ति को जप, ध्यान, स्वाध्याय आदि साधना की इच्छा होती है। यह शान्त-वृत्ति है।

जब मन में राजसिकता का प्राबल्य होता है, तब घोर-वृत्ति कार्यपरायण रहती है। तब मन में काम-विकारों का राज्य होता है।

जब मन में तामसिकता छा जाती है, तब व्यक्ति लापरवाह, आलसी, मूर्ख तथादिक दुर्गुणों का दास बन जाता है। तब उसमें मूढ़-वृत्ति का प्राबल्य होता है।

चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं। मानसिक सङ्कल्प-विकल्पों के संयम को योगाभ्यास कहा जाता है। महर्षि पतञ्जलि के राजयोग का दूसरा सूत्र यही है: "योगश्चित्त-वृत्तिनिरोधः।"

इस प्रकार निरोध कर चुकने पर योगी अपने दिव्य स्वरूप में विचरता है। नहीं तो वह काम, क्रोधादिक मानसिक वृत्तियों के साथ विचरता फिरता है और सदा पतन की ओर ही जाता है।

राजयोग के अनुसार वृत्तियों के दो विभाग हैं—क्लिष्ट वृत्ति और अक्लिष्ट वृत्ति। पहली वृत्ति दुःख का और दूसरी वृत्ति आनन्द का कारण बनती है।

इनके भी पाँच भेद हैं—प्रमाण, (सही ज्ञान), विपर्यय (गलत जानकारी), विकल्प (विचार), निद्रा और स्मृति। अर्थात् किसी वृत्ति से तो सही ज्ञान होता है अन्य किसी से ज्ञान में विपर्यय हो जाता है।

वृत्तियों की अधीनता कभी स्वीकार न करो। बल्कि उनके साक्षी रहो। उनके प्रति उदासीन रहो। उदासीन रह कर तुम वृत्तियों पर अपना अधिकार रख सकते हो और आत्मज्ञान की प्राप्ति कर सकते हो।

मन में जब भगवद्विचार की एक ही वृत्ति शेष रहती है, तब उस अवस्था को सविकल्प समाधि कहा जाता है। वृत्ति के अभाव में निर्विकल्प समाधि का अवतरण होता है।

हे मोक्षप्रिय! वृत्तियों को अन्तर्मुख कर दो। अपने को ब्रह्म में समासीन कर दो। इस प्रकार तुम ब्रह्मज्ञानी बन पाओगे।

अहिंसा

अहिंसा महान् धर्म है। अहिंसा शक्तिसम्पन्न पुरुषों का बल है। अहिंसा की परिभाषा है, प्रेम की विशालता। अहिंसा से हिंसा का प्रतिकार होता है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

पूज्य गुरो, अब मुझे अहिंसा-व्रत का उपदेश दीजिए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

हे वत्स, मन, कर्म और वचन से किसी को दुःख न देना अहिंसा-व्रत का पालन करना है। अहिंसा परम धर्म है, यही महान् कर्त्तव्य है।

राजयोग में यम अङ्ग के अन्तर्गत सर्वप्रथम अहिंसा का वर्णन आता है; तदुपरान्त सत्यादि नियमों का।

यदि साधक अहिंसा-व्रत में दृढ़भूमि प्राप्त कर चुका है तो अन्य सद्गुण स्वतः ही विकसित हो जायेंगे। ऐसे साधक की शक्ति के सामने शत्रुता और विरोधाभास का निवारण हो जाता है। ऐसे व्यक्ति के सामने व्याघ्र और गाय, साँप और मेढक साथ-साथ, पारस्परिक वैर-भाव त्याग कर रहते हैं।

अहिंसा, दूसरे शब्दों में प्रेम की विशालता को कहते हैं।

अहिंसा-व्रत का पालन करने वाला कायर नहीं, कमजोर नहीं, वह आध्यात्मिक शक्तिसम्पन्न है। उसके प्रेम का कोई पारावार नहीं। अहिंसा-व्रतधारी क्षमा का मूर्तिमान् अवतार होता है। जो लोग बुरा करते हैं, वह उनके प्रति भलाई का व्यवहार करता है। अहिंसा अति-बलवान् का शस्त्र है।

सत्य

मन, कर्म और वचन से सत्यशील बनो। सत्य सदा विजयी होता है। सत्य मार्ग से ही आप सभी गुणों तक पहुँच सकोगे सत्य ही ब्रह्म है।

मोक्षप्रिय ने कहा —

हे स्वामिन्, अहिंसोपदेश अमृत के समान है। मैंने सब कुछ समझ लिया, अब और कुछ जानना शेष नहीं रहा। आपने तो गागर में सागर भर कर मुझे दे दिया है। अब मुझे सत्य की दीक्षा दीजिए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं —

मन, कर्म और वचन से सत्यशील होना आवश्यक है। ब्रह्म को सत्य का ही रूप मानते हैं। सत्यपालन करने से ब्रह्म का साक्षात्कार हो सकता है। सत्य की सत्ता तीनों कालों में रहती है। सत्य सदा विजयी होता है। सत्य से ही यह जगत् उत्पन्न हुआ और सत्य में ही यह चिरकाल तक स्थिर रहकर अन्ततः सत्य में ही लीन हो जायगा।

अहिंसा के समान सत्य भी योग और वेदान्त की आधार-शिला है। असत्यभाषी करोड़ों जन्मों में भी ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं कर सकता।

सदा सच बोलो; हम यही सीखते आ रहे हैं। सत्य बोलने से हम चिन्ता, सन्ताप और विताप से मुक्त हो जायेंगे। सच

बोलने वाला सुख की नींद सोता है। सच बोलने वाला सदा आनन्द की वंशी बजाते रहता है।

मोक्ष-द्वार पर सत्य का पहरा रहता है। यदि आप सत्य-व्यवहार कर रहे हैं तो आपकी पहुँच अन्दर के महल तक हो सकती है। साहस, अहिंसा, पवित्रता, संयम, सहनशीलता इत्यादिक दैवी गुण आपके पास स्वतः ही आ जायेंगे। सत्य से मित्रता कर लेने पर शान्ति, सन्तोष, पवित्रता आपके सहचर बन जायेंगे।

अग्नि, वायु और सूर्य सत्य व्यवहार में परायण रहते हैं। नियत समय पर वे अपना-अपना कर्त्तव्य सम्पन्न करते हैं। सत्य के बल पर वे एक क्षण भी कर्त्तव्य-च्युत नहीं होते; परन्तु मनुष्य को देखिए, कितना अहङ्कार भरा है इसमें, जो यह सत्य की प्रवञ्चना कर रात-दिन अनेकों दुर्व्यवहार करता रहता है। तभी तो यह नरक-लोक को प्राप्त होता है।

सत्य में अपना जीवन बिताओ; सत्य वचन बोलो और सत्यस्वरूप तथा सत्यकाम बन जाओ।

याद रखो—'सत्यमेव जयते नानृतम्'—सत्य ही सदा विजयी होता है, असत्य कभी नहीं।

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य योग, भक्ति और वेदान्त की आधार-शिला है, जिस पर सुदृढ़ भवन का निर्माण हो सकेगा। ब्रह्मचर्य अभ्यास के बिना आध्यात्मिक उन्नति सम्भव नहीं। ब्रह्मचर्य का पालन ओज-शक्ति के साथ-साथ ध्यान में सहायता प्रदान करता है। ब्रह्मचर्य-व्रत से कोई हानि नहीं हो सकती है और उससे क्या-क्या लाभ होते हैं, यह तो एक बड़ी लम्बी कहानी हो जायगी।

मोक्षप्रिय ने कहा—

परम गुरो, अहिंसा और सत्य का ज्ञान मुझे हो ही गया है। मैंने इन गुणों का अभ्यास आरम्भ कर दिया है। मुझे उत्तरोत्तर शान्ति का अनुभव होता जा रहा है। अब आप मुझे ब्रह्मचर्य में दीक्षित कीजिए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

ब्रह्मचर्य का एक मूलभूत धर्म है। योग, भक्ति और वेदान्त की सफलता इसी पर आधारित रहती है। राजयोग के अन्तर्गत प्रथम अङ्ग यम का यह प्रमुख अभ्यास है।

यह न सोचो कि ब्रह्मचर्य पालन किये बिना भी आप आध्यात्मिक सफलता हासिल कर सकोगे।

मन, कर्म और वचन से पवित्र रहना ब्रह्मचर्य है। वीर्य-धारण ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य का पालन करो; आप पूर्ण पर-ब्रह्म को प्राप्त कर सकोगे।

आध्यात्मिक मार्ग में ढील-ढाल को स्थान नहीं। पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना होगा; यदि पूर्ण शान्ति की प्राप्ति करनी हो तो। **"मैं धीरे-धीरे अभ्यास आरम्भ कर रहा हूँ—क्रमशः मैं ब्रह्मचर्य-पालन की चेष्टा कर रहा हूँ—मैं कल से ब्रह्मचर्य का पालन करना आरम्भ कर दूँगा।"** इस प्रकार की धारणा को साधना में स्थान नहीं दिया जा सकता। **"कल, धीरे, क्रमशः"** ये माया के मोहक मार्ग हैं। कल आयेगा या नहीं, सन्देहजनक है। यदि कुछ सम्पादन करना चाहते हो तो अभी से आरम्भ कर देना।

यदि काम-शक्ति को नियन्त्रित कर दो या परिवर्तित कर दो तो वह ओज के रूप में वदल जाती है। साधारण वीर्य-शक्ति, यदि सञ्चित रही तो आध्यात्मिक शक्ति के रूप में परिवर्तित हो जाती है। यही शक्ति साधक के ध्यान में सहायता पहुँचाती है।

ब्रह्मचर्य-पतन के आठ रास्ते हैं। इन रास्तों को बन्द कर दो।

अपनी काम-प्रवृत्तियों के मुँह को फेर कर, सभी बाहरी द्वारों को वन्द कर देने से ब्रह्मचर्य पालन में सहायता मिलती है। इस प्रकार के अभ्यास से ही साधक को ब्रह्मानुभूति का आनन्द मिलने लगता है।

ब्रह्म का गुण है, पवित्रता। अतः पवित्र वस्तु को प्राप्त करने के लिए आपको भी पवित्र होना पड़ेगा। आधुनिक भोजनालयों में जाते समय आपको आधुनिक वेश धारण करना पड़ता है; मध्यकालीन वेश में जाने से आपको स्थान नहीं मिल सकता। उसी प्रकार पवित्र स्थान में प्रवेश पाना चाहो तो पूर्णतया पवित्र वन जाओ। प्रवेश पाने का और कोई

दूसरा मार्ग नहीं है।

ब्रह्मचर्य पालन करने से कोई भी हानि नहीं होती। बल्कि इसके सम्पालन से आपकी बुद्धि तीव्र होगी; आपकी शारीरिक स्थिति सुन्दर रहेगी तथा आपकी आध्यात्मिक शक्ति का आगार खुल जायगा। ब्रह्मचारी अपने कार्यों में सदा सफल रहता है। ब्रह्मचारी अद्भुत स्मृति-सम्पन्न होता है। हनुमान्, भीष्म, स्वामी विवेकानन्द और स्वामी दयानन्द जी की जीवनियाँ पढ़ो। ब्रह्मचर्य का रहस्य आपकी समझ में आ जाएगा।

फ्रायड् और उसके अनुयायियों के वचनों और सिद्धान्तों को पैर तले दबा कर अपना काम करते जाओ। तुम मनुष्य हो; हैवान नहीं, जानवर नहीं। इन नास्तिक-वादियों की पुस्तकों का अवलोकन करना महापाप है। यदि मेरी बात नहीं मानोगे तो सदा दु:खसागर में ही डूबे रहोगे; सदा अन्धकार में ही भटकते रहोगे। अन्धा व्यक्ति भला किस प्रकार अन्धे को राह बतला सकता है। ये मनोवैज्ञानिक और मानस-विवेचन किस प्रकार आपको अनन्त शान्ति का मार्ग बतला सकते हैं, जब कि इनको ही शान्ति की सत्ता का रत्तीमात्र भी पता नहीं। ये लोग न तो द्रष्टा हैं, न ऋषि और न सन्त तथा मुनि ही। भौतिकवाद में ही अपना जीवन व्यतीत करने वाला समाज किस प्रकार आध्यात्मिकता की शिक्षा देने का अधिकार रखता है। आध्यात्मिक शान्ति बुद्धिवाद द्वारा सिद्ध नहीं होती; और आध्यात्मिक आनन्द लोक-व्यवहारों द्वारा प्राप्त नहीं होता। ज्ञान चाहिए ज्ञान; अभ्यास और अनवरत अभ्यास।

प्रिय वत्स! मोह त्याग कर अभ्यास करो और परम शान्ति में विश्राम भी।

क्रियायोग

क्रियायोग शुद्धि के लिए है। तपस्या से तेज प्राप्त होता है। तपस्या के भेद हैं। स्वाध्याय से मन सत्त्वगुणशील होता है। ईश्वर-प्रणिधान से अहङ्कार, स्वार्थपरता और वृथाभिमान का निराकरण होता है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे स्वामिन्, क्रियायोग किसे कहते हैं?

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

क्रियायोग की साधना शुद्धि के लिए है। इसके अभ्यास से मानसिक पवित्रता का मार्ग स्वच्छ और निष्कण्टक हो जाता है। सर्वप्रथम चित्त-शुद्धि और तब दिव्य ज्योति का प्रकाश दिखायी दे सकता है।

तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान के अभ्यास की साधना का नाम क्रियायोग है।

तपस्या साधक को देदीप्यमान् कर देती है। उसके आन्तरिक विकार पराभूत हो जाते हैं और चेहरे में दिव्य तेज दमकने लगता है। तपस्वी की आँखों से तेज प्रस्फुरित होता है।

उपवास भी तपस्या है। इससे मन पवित्र होता है। पाप धुल जाते हैं। चान्द्रायण और कृच्छ्रायण व्रत तथा पञ्चाग्नि तपस्या से सहनशीलता का विकास होता है। तपस्वी परिशुद्ध हो जाता है।

पवित्रता, सरलता, सन्तोष, अहिंसा, देवपूजन, ब्राह्मण पूजन, गुरुपूजन और सन्तपूजन शारीरिक तपस्या के नाम जाने जाते हैं।

जिस वाणी से दूसरों को दुःख न हो, जो वाणी सत्यशी हो, वह 'वाणी की तपस्या' के नाम से जानी जाती है।

इसी प्रकार मन की तपस्या भी है। शान्ति, प्रसन्नता एकान्त, आत्म-संयम, पवित्रता और तापसिक प्रकृति को 'मानसिक तपस्या' के नाम से जाना जाता है।

नङ्गे पाँवों चलना, शीतल जल में खड़े हो कर जप करना, नङ्गी जमीन पर सोना तथादिक तपस्याओं का नाम तितिक्षा है। यह शारीरिक तप है।

स्वाध्याय क्रियायोग का एक अङ्ग है। स्वाध्याय से बुद्धि निर्मल होती है। निरन्तर अध्ययन से रजोगुण और तमोगुण निःसत्त्व हो जाते हैं। मन में सात्त्विकता आ विराजती है।

ईश्वर-प्रणिधान क्या है? परमात्मा के प्रति आत्म-निवेदन।

अपना शरीर, मन, प्राण और अपनी आत्मा—सभी को परमात्मा के चरणों पर निछावर कर दो। अपने कर्मों को परमात्मा की पूजा समझ कर करो। अपनी मनमानी न करो। परमात्मा जो कुछ आदेश दे रहे हों, उन्हीं का पालन करो। अपने को उनके ही हाथों का खिलौना जानो। इस प्रकार अपने को निरहङ्कार, निरभिमानी और निःस्पृह बना कर आत्म-शान्ति का सेहरा बँधवा लो।

प्राणायाम

श्वास-क्रिया पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लेने से प्राण पर विजय पायी जा सकती है। प्राणायाम का अभ्यास मनुष्य को सभी आधि-व्याधियों से विमुक्त कर कुण्डलिनी-शक्ति को जागृत करता है। राजयोगी के लिए प्राणायाम जितना आवश्यक है, उतना ही एक भक्त, एक कर्मयोगी और एक वेदान्ती के लिए भी।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे स्वामिन्, अब मुझे प्राणायाम की शिक्षा दीजिए। क्या भक्त और कर्मयोगी और वेदान्ती भी प्राणायाम का अभ्यास कर सकते हैं ? क्या वह उनके लिए अनिवार्य है ?

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

श्वास-प्रश्वास-क्रिया में सन्तुलन लाने की क्रिया का नाम प्राणायाम है। प्राण का स्थूल रूप श्वास है। इसपर विजय पाने से प्राण पर भी विजय पायी जा सकती है।

प्राण परमात्मा का महान् स्वरूप है। प्राण ही ईश्वर है। प्राण महान् तत्त्व है। गहरी नींद में जब आपकी इन्द्रियाँ और आपका मन भी सो जाता है, प्राण सतत जाग्रत रहता है।

प्राण में स्फुरण होता है, तभी मन और इन्द्रियां अपना-

अपना व्यापार करती हैं। प्राण को शास्त्रों ने 'ज्येष्ठ और श्रेष्ठ' कह कर पुकारा है।

राजसिक प्रकृति की प्रबलता के कारण हमारे शरीर में प्राण असन्तुलित है। यदि आप प्राणायाम का अभ्यास करोगे तो इसमें साम्य का आविर्भाव होगा और प्राण की गति छन्दोबद्ध हो जायगी।

प्राणायाम का अभ्यास सभी प्रकार के रोगों का निवारण करता है। जिन रोगों को चिकित्सक असाध्य कह कर टाल देते हैं, उनको भी प्राणायाम के अभ्यास से ठीक किया जा सकता है। इसके अभ्यास से कुण्डलिनी-शक्ति जागती है और शरीर स्वस्थ तथा दीर्घजीवी रहता है।

प्राणायाम का अभ्यास नियमपूर्वक करो। ब्रह्मचर्य का पालन करो। मिताहारी बनो। थोड़े ही समय में आप अद्भुत सफलता प्राप्त कर सकोगे।

प्राणायाम के आठ भेद हैं—उज्जायी, सूर्यभेदी, शीतली, शीतकारी, प्लावनी, भ्रामरी, भस्त्रिका और कपालभाति।
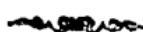
शीतली प्राणायाम शरीर को शीतल रखता है, रक्त का शोधन करता, प्यास बुझाता तथा चर्मरोगों का निवारण करता है। शीतकारी के लाभ भी इसी प्रकार जानो।

भस्त्रिका से फेफड़े मजबूत बनते हैं; ग्रन्थियों का निराकरण होता है। दमा और कास के रोग को दूर करने के लिए यह प्राणायाम अत्यन्त उपयोगी है।

सूर्यभेदी और भस्त्रिका से शरीर में गरमी पैदा की जाती है।

पद्मासन अथवा सुखासन में बैठ जाओ। बायें नासिका-पुट से धीरे-धीरे श्वास अन्दर लो। यह क्रिया पूरक नाम से जानी जाती है। जितनी देर तक हो सके, श्वास को अन्दर ही रोके रहो और मन में प्रणव का जप करते जाओ। इसे कुम्भक कहते हैं। अब दाहिने नासिका-पुट से धीरे-धीरे श्वास बाहर निकालो। इसी प्रकार पुनः दाहिने नाक से श्वास खींच कर कुछ देर रोको और बाएँ मार्ग से निकाल दो। इस प्रक्रिया को ५ या ६ बार दोहराओ।

यह प्राणायाम-विज्ञान है। कर्मयोगी और भक्त और वेदान्ती भी प्राणायाम का अभ्यास कर सकते हैं। इसका अभ्यास मन को शान्त कर, राजसिक और तामसिक अंश का पराभव कर देगा। प्राणायाम के अभ्यास से धारणा-शक्ति तीव्र होती और कार्य में आशातीत सफलता मिलती है।

धारणा

अभ्यास और वैराग्य की सहायता से मन को एकाग्र करने का नाम धारणा है। यम और नियमों का पालन परमावश्यकीय है। नये साधकों के लिए सगुण धारणा आवश्यक है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे गुरुदेव, अब धारणा का उपदेश दीजिए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

किसी भी साकार वस्तु या विन्दु या परमात्मा के रूप या गुण पर मन को एकाग्रत: स्थापित करना धारणा है।

मन सदा घूमता रहता है। इसकी दौड़ विषय-पदार्थों की ओर होती है। यह सदा भोगानन्द की ही वातें सोचता रहता है। बन्दर की तरह एक वस्तु से दूसरी वस्तु पर कूद पड़ना ही इसका स्वभाव है।

वैराग्य और अभ्यास द्वारा मन को एकाग्र करने की साधना धारणा कहलाती है।

धारणा में सफलता एक-दो दिन में ही मिल जाये, ऐसा सम्भव नहीं। एक सप्ताह ही नहीं, महीनों तक आपको धैर्य-पूर्वक प्रतीक्षा करनी होगी। श्रद्धा और उत्साह के साथ दीर्घ-काल तक धारणा का अभ्यास करते रहना होगा।

एक और बात याद रखने योग्य है कि ब्रह्मचर्य, वैराग्य

और निरहङ्कारिता के अभाव में और तृष्णा से विराग लिए बिना धारणा में सफलता मिलने की नहीं। यह नहीं कि एक ओर तो फूटे घट से जल निकलते जाय और दूसरी ओर आप उसे भरते रहें और यह सोचें कि घट अभी भर जायगा।

धारणा के अभ्यास में सफलता पाने के लिए यह आवश्यक होता है कि साधक यम और नियम का समुचित पालन कर चुका हो।

आसन जय करो। प्राणायाम के अभ्यास से श्वास और प्राण पर विजय पाओ। इन्द्रियों को विषय-वासनाओं से हटा लो। अब आप धारणा में सत्वर सफलता पाओगे।

यदि आप धारणा के अभ्यास में पक्के बन जाओ तो ध्यान और समाधि का अवतरण स्वत: हो जायगा।

धारणा का अभ्यास दो प्रकार से किया जाता है। एक तो स्थूल पदार्थों पर, दूसरा सूक्ष्म पदार्थों पर। नये साधक के लिए स्थूल पदार्थ पर ही धारणा का अभ्यास सरल है। हाँ, अभ्यास दृढ़ हो जाने पर वह सौन्दर्य, पवित्रता, शान्ति, आनन्द, मोक्षादिक गुणों पर अपनी धारणा को स्थिर कर सकता है।

प्रारम्भ में दीवार पर एक काला दाग डाल दो। एकटक उस बिन्दु को निहारते रहो। अथवा मोमबत्ती की लौ पर एकटक निहारो। तारों को एकटक निहारो। आराध्यदेव के चित्र की ओर एकटक निहारो। श्वास के साथ 'सोऽहम्' मन्त्र जपो और एकटक उसका विचार करते रहो। इसी प्रकार चन्द्रमा पर भी धारणा को स्थिर किया जा सकता है।

अभ्यास-काल में नियमित और नियमपूर्वक रहना चाहिए। यह नहीं कि एक दिन किया और दूसरे दिन न किया। फिर

सारा दोष गुरु के मत्थे कि क्या बेकार की बात सिखलायी। एक 'दिन के लिए भी अभ्यास न छोड़ो। नियत समय पर अभ्यास के लिए बैठ जाना चाहिए, चाहे प्रलय ही क्यों न हुआ चाहता हो। यह भी नहीं कि, एक दिन तो पाँच मिनट और दूसरे दिन आधे घण्टे तक। समय की पाबन्दी और समय की उपयोगिता का विचार सदा मन में रहना चाहिए। अपने आहार-विहार में युक्तियुक्त बनो। सात्त्विक और मिताहारी बनो। अपनी सङ्गति का भी विशेष ध्यान रखो। बुरी सङ्गति, भले अपनों की ही क्यों न हो, तुरन्त त्याग दो। गुरु और भगवान् में अटल श्रद्धा रखो। आप सिद्धि प्राप्त करोगे।

ध्यान

मन को विषय-पदार्थों के विचारों से विमुक्त करना ध्यान है। ध्यान में मन परमात्मा में रमता है। ध्यान के लिए निरन्तर अध्यवसाय की आवश्यकता है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे स्वामिन्, अब आप ध्यान का आदेश दीजिए। मैं रोज सुबह चार बजे जाग कर ध्यान का अभ्यास करता हूँ, किन्तु मेरा मन इधर-उधर घूमते रहता है; क्या किया जाय ?

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

वत्स, ध्यानपूर्वक सुनो। "ध्यानं निर्विषयं मनः"—ध्यान में मन विषय-विलासहीन हो जाता है। मन सदा परमात्मा में ही रमता रहता है।

यह भी सम्भव नहीं कि तुम सहसा ही कूद कर ध्यान अथवा समाधि के मैदान में पहुँच जाओ। ऐसा किया तो तुम अपनी टांग के अलावा और कुछ नहीं तोड़ोगे।

निष्काम सेवा द्वारा अपने दिल को पवित्र बना लो। भक्ति द्वारा अपने भावों को उच्च और विकसित कर लो। सदाचार और सद्विचारों का पालन करो। पूर्ण सदाचारपूर्वक जीवन बिताओ। फिर देखो कि किस प्रकार ध्यान का अभ्यास पूर्ण नहीं होता है।

धारणा के उपरान्त ध्यान का आरम्भ स्वतः हो जाता है।

इसी प्रकार अनवरत ध्यान रहने पर समाधि का अवतरण होता है।

स्थूल प्रकृति वाले साधकों के लिए ध्यान का कोई-न-कोई अवलम्ब होना चाहिए। अतः आरम्भ में सगुण ध्यान करना चाहिए। भगवान् राम या कृष्ण अथवा अपने गुरु अथवा देवी अथवा अपने मनोनीत आराध्य देव के स्वरूप का ध्यान करो। जिस देवता की मूर्ति पर आप धारणा का अभ्यास कर रहे हैं, उसी देवता पर ध्यान करना चाहिए।

अब दिव्य गुणों पर ध्यान करना आरम्भ कर दो। सर्व-व्यापकता, सर्वज्ञता, सर्वशक्तिमत्ता, पूर्णता तथादिक गुणों की भावना कर ध्यान करो। यह निर्गुण ध्यान का मार्ग है। अब आप धीरे-धीरे निराकार पर ध्यान करना आरम्भ कर सकते हैं।

एक दिन या सप्ताह या महीने में ही गम्भीर ध्यान हो सकता है, यह मत सोचना। प्रयत्न करते रहो और करते रहो। धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करो। सदा सावधान और दत्त-चित्त रहो। वासना, तृष्णा और महत्वाकांक्षाओं को त्याग दो। तीव्र वैराग्य, तीव्र लगन और आत्म-ज्ञान की तीव्र अभिलाषा को मन में जागृत करो। इस प्रकार आप धीरे-धीरे अपने को ध्यान में अवस्थित कर पाओगे।

प्रयत्न करो। जब तक सफल न उतरो, डटे रहो। ध्यान करो, ध्यानी बनो और ध्यानस्थ हो जाओ। सफल बनोगे; जरूर सफलता का सेहरा बँधवा सकोगे।

ध्यान में विघ्न

ध्यान के अभ्यास में विघ्न होते हैं। साधक सो जाता है। कल्पना की उड़ान भरने लगता है। अन्यमनस्क हो जाता है। ध्यान के अनवरत होने से समाधि का अवतरण होता है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

महाप्रभो, आपने ध्यान का उपदेश दे दिया है। कृपया ध्यान के मार्ग में आने वाले विघ्नों का भी समुचित वर्णन कीजिए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

लय, विक्षेप, कषाय, रसास्वाद—ये ध्यान के मार्ग के प्रमुख विघ्न हैं। ब्रह्मचर्य में पतन, आध्यात्मिक अहङ्कार की भावना, आलस्य, व्याधियाँ, लोक-सङ्गति, अधिक आहार, अधिक परिश्रम, अधिक सङ्गति तथा राजसिक प्रकृति के कार्य ध्यान के मार्ग में विघ्न सिद्ध होते हैं।

प्राणायाम, आसन और मिताहार से निद्रा को जीता जा सकता है।

प्राणायाम, जप, उपासना और त्राटक के अभ्यास से विक्षेप पर विजय पायी जा सकती है।

कषाय को वैराग्य, विवेक, स्वाध्याय, ध्यान और आत्म-चिन्तन द्वारा दूर किया जा सकता है।

सविकल्प समाधि में साधक को जो आनन्द मिलता है,

उसमें ही रमते रहना रसास्वाद के नाम से प्रसिद्ध है। यह भी ध्यान के मार्ग में विघ्न है। साधक को सविकल्प समाधि में एक प्रकार का सन्तोष हो जाता है। वह सोचता है कि उसे प्राप्तव्य की प्राप्ति हो चुकी और वह परम सत्ता को प्राप्त कर चुका है। रसास्वाद की अवस्था से जाग कर निर्विकल्प समाधि के लिए प्रयत्न करो।

ब्रह्मचर्य में पतन होने से मन अपवित्रता से भर जाता है। मन सांसारिकता की ओर दौड़ने लगता है। शरीर में निर्बलता का सञ्चार होने लगता है। साधक साधना करने में असमर्थ रहता है।

साधक जब कुछ आध्यात्मिक उन्नति कर लेता है तो सात्त्विक अहङ्कार उसे वशीभूत कर लेता है। उसे विचार आता है कि वह साधारण गृहस्थ की अपेक्षा महान् है। माया अनेकों प्रकार से उसे गिराती है। आत्म-विचार द्वारा इस अहङ्कार का दमन करो।

आलस्य भी एक प्रकार का विघ्न है। आसनों का अभ्यास करो, प्राणायाम भी। दिन में दो घण्टे निष्काम सेवा करो। किसी-न-किसी काम के लिए इधर-उधर दौड़ लगाते रहो। अपने हाथों से कुएं से जल खींचो। एक स्थान से पत्थरों को उठा दूसरे स्थान में ले जाओ। इसी प्रकार आलस्य पर विजय पायी जाती है।

आरोग्य के नियमों का परिपालन करना चाहिए। सदा साफ रहो। नियमपूर्वक व्यायाम का अभ्यास करो। कभी भी आसन और प्राणायाम न छोड़ना। खाने-पीने में सावधानी बरतनी चाहिए।

दुर्जनों की सङ्गति से दूर रहो। जो लोग कामपूर्ण बातें करते हों, जो धन और दुनियादारी की चर्चा कर रहे हों, उनके पास न जाना ही अच्छा है।

हद से ज्यादा परिश्रम भी नहीं करना चाहिए। अधिक परिश्रम करने से सभी गात्र शिथिल हो जाते हैं और ध्यान असफल रहता है।

व्यक्ति-सम्पर्क से मन में अनेकों प्रकार के प्रभाव उत्पन्न होते हैं; किसी के प्रति आपका प्रेम हो जाता है और किसी के प्रति आप क्रोधित हो जाते हो। सम्पर्क से जितना दूर रहोगे, उतना ही आनन्द भी मिलेगा।

अपनी बातों को ही सब कुछ मत समझो। **"मैंने यह किया और मैंने वह किया"**—कहना साधक के लिए उचित नहीं। विनम्र बनो। सदा विचारशील रहो। सदा सावधान रहो। मन को सदा सात्त्विक गुणों से भरते रहो।

एक-एक कर सभी विघ्नों का परिहार करो। अब तुम आध्यात्मिक मार्ग पर सरलता से चल पाओगे।

षष्ठम अध्याय

तदितर इतरः

हठयोग

हठयोग का सम्बन्ध शरीर और प्राण से है। हठयोग अभ्यास साधक को राजयोग के लिए तैयार करता है। आ बन्ध, क्रिया, मुद्रादि के अभ्यास को हठयोग कहा जाता है

मोक्षप्रिय ने कहा—

पूज्य गुरुदेव, कृपया हठयोग की विवेचना कीजिए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

हठयोग का सम्बन्ध आसन, प्राणायाम, बन्ध तथा मु है। इसका अभ्यास शरीर और प्राण से सम्बन्ध रखता है।

हठयोग के अभ्यास से साधक स्वस्थ रहता है; अ प्रकार की व्याधियों का दमन होता है; कुण्डलिनी-शक्ति ज होती है; शरीर हलका तथा मेरुदण्ड लचीला हो जाता है

हठयोग में सिद्ध हो जाने से ध्यान में सफलता मिलती है। हठयोग का अभ्यास प्राण और अपान वायु के संयोग को जन्म देता है, तदनन्तर संयुक्त प्राण-अपान को सुषुम्ना-मार्ग द्वारा मेरु-प्रणाली में ले जाता है।

आसनों में चौरासी आसनों का नाम सुना जाता है। चौरासी आसनों में कुछ आसन मुख्य हैं। वे हैं—शीर्षासन, सर्वाङ्गासन, हलासन, मत्स्यासन, भुजङ्गासन, शलभासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन, मयूरासन, मत्स्येन्द्रासन। ध्यान के लिए पद्मासन, सिद्धासन, सुखासन और स्वस्तिकासन प्रधान हैं।

प्रातःकाल खाली पेट आसनों का अभ्यास करना चाहिए। अभ्यास के उपरान्त ठहर कर दूध पीना चाहिए।

बन्धों में प्रमुख बन्ध हैं—मूल-बन्ध, जालन्धर-बन्ध, उड्डीयान-बन्ध तथा महा-बन्ध।

मुद्राओं में प्रमुख मुद्राएं—खेचरी, शाम्भवी, अश्विनी, महामुद्रा, शक्तिचालिनी, योनि और षण्मुखी मुद्रा।

छः क्रियाओं को मुख्य बतलाया गया है। वे हैं—नेति, धौति, वस्ति, नौली, कपालभाति और त्राटक। क्रियाओं के अभ्यास से शरीर के अन्दर का मल निकल जाता है। 'नेति' के अभ्यास से नासिका-मार्ग साफ हो जाता है। 'धौति' से पेट की सफाई की जाती है। 'वस्ति' के अभ्यास से गुदा-द्वार से जल भरकर उदर की सफाई की जाती है। 'नौली' से पेट का मन्थन किया जाता है। एकटक दृष्टि से देखने को 'त्राटक' क्रिया कहते हैं।

सुखपूर्वक, भस्त्रिका, उज्जायी, शीतली और शीतकारी

प्राणायाम को मुख्य प्राणायाम बतलाया गया है।

अभ्यास में नियमितता होनी चाहिए। एक दिन के लिए भी अभ्यास से अवकाश लेना साधक के लिए उचित नहीं।

नित्यप्रति कुछ एक आसन अवश्य किये जाने चाहिए। तभी शरीर स्वस्थ रह सकता है। कुछ एक प्राणायाम भी अवश्य किये जाने चाहिए। आसन-सम्बन्धी सभी प्रकार की पुस्तकों को पढ़ना उचित नहीं। कहीं गलत रास्ता न पकड़ बैठो। अतः प्रामाणिक पुस्तकों का ही अध्ययन करो। आजकल हठयोग के नाम पर अप्रामाणिक साहित्य का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। योगविद्या को रहस्यमयी बतला कर जनता की आँखें बन्द की जा रही हैं। योग न तो रहस्य है, न जादू और न भानुमती का पिटारा ही कि "चुटकी मारी और सोना बरसा अथवा आँखें बन्द कीं, कोई आश्चर्य प्रकट हो गया।"

योग एक स्पष्ट विज्ञान है और अत्यन्त प्रक्रियात्मक। समझने वाला इससे लाभ उठाता है; किन्तु योग को जादू समझने वाले कुछ भी नहीं पा सकेंगे। आसनों के अभ्यास से जो आसमान में उड़ना चाहते हैं या अदृश्य होने की विद्या को जानना चाहते हैं, यह निश्चय समझ लें कि वे सदा निराश ही रहेंगे।

कुण्डलिनी-योग

समस्त जीवराशि में जो शक्ति सम्प्राणित है, वही कुण्डलिनी-शक्ति के नाम से प्रसिद्ध है। इस शक्ति का विकास अनेकों साधनों से होता है। अनेकों मानसिक चक्रों को पार करती हुई, यह अन्ततः सहस्रार में परम शिव से एक हो जाती है। तभी योगी निर्विकल्प समाधि का अनुभव प्राप्त करता है। कुण्ड-लिनी-योग का अभ्यास आध्यात्मिक सिद्धि के द्वार खोलता है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे स्वामिन्, अब कुण्डलिनी-योग का उपदेश दीजिए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

मूलाधार प्रदेश में जीव की शक्ति सोयी पड़ी है, उसे जगाने के लिए कुण्डलिनी-योग का अभ्यास किया जाता है।

यह शक्ति सर्पाकार है जो साढ़े तीन कुण्डलियाँ लेकर बैठी रहती है। तीनों कुण्डलियाँ तीनों गुणों की प्रतीक हैं। जो आधी कुण्डली है, वह प्रकृति-विकृति की प्रतीक है।

समस्त जीवराशि में एक चेतना विद्यमान है, एक शक्ति सम्प्राणित है, उसी को 'कुण्डलिनी' के नाम से पुकारा जाता है। इसका स्थान मेरु-प्रणाली के मूल-प्रदेश में है।

हठयोगी आसनादि के अभ्यास से इस शक्ति का विकास करते हैं। राजयोगी धारणा, ध्यान और पवित्र आचार-विचार द्वारा, भक्तगण भक्ति और आत्म-निवेदन द्वारा तथा ज्ञानीजन

गम्भीर आत्म-चिन्तन और ब्रह्म-विचार द्वारा इस शक्ति व
जागृत करते हैं।

सुषुम्ना के मार्ग से यह शक्ति विकसित होती है; छह
मानस-चक्रों को पार कर, अन्ततः सहस्रार में परम शिव से एव
हो जाती है।

छः सूक्ष्म चक्र हैं : मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत,
विशुद्ध और आज्ञा। सहस्रार चक्र परम गति का चरम केन्द्र
है। शक्ति का विकास जब इस चरम चक्र तक होता है तो
योगी निर्विकल्प समाधि में अवस्थित हो जाता है।

इस योग का अभ्यास कई प्रकार की आध्यात्मिक सिद्धियों
को जागृत करता है; किन्तु योगी के लिए उनका भौतिक
उपयोग वर्जित है।

यदि अभ्यासी वैराग्य, विवेकादि दैवी गुणों से सम्पन्न है
तो इस शक्ति को सत्वर ही जगा सकता है।

यदि हृदय में मल भरा है, मन में वासनाओं का राज्य है
तथा अभ्यासी सांसारिक एषणाओं से ऊपर नहीं उठ चुका है
तो कुण्डलिनी का जागरण उसके जीवन में महान् पतन का
कारण भी बन जाता है। बहुधा ऐसा देखा गया है।

कुण्डलिनी जगाने से पहिले प्रक्रियात्मक रीति को निभा
लेना चाहिए। तभी सफलता सच्ची सफलता बन सकती है;
अन्यथा सफलता ही विफलता और पतन का रूप भी धारण
कर लेती है।

लम्बिका-योग

इसका दूसरा नाम खेचरी-मुद्रा है। खेचरी-मुद्रा के अभ्यास से भूख और प्यास पर विजय पायी जा सकती है; किन्तु इस योग की प्राप्ति अति-दुष्कर है। अत्यन्त कष्ट से ही इसकी सिद्धि होती है।

मोक्षप्रिय ने कहा —

हे स्वामिन्, कृपया मुझे लम्बिका-योग का उपदेश दीजिए। मैंने अनेकों योगियों से यही प्रश्न किया, किन्तु किसी ने भी सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया। अब आप इसका ज्ञान कराइए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

लम्बिका-योग अत्यन्त दुष्कर है। इसकी दीक्षा केवल उसी गुरु से ली जा सकती है, जिसने इसका दीर्घ काल तक अभ्यास किया और इसमें सफलता पायी हो। योगीजन इस योग को सदा गुप्त रखते हैं। 'खेचरी-मुद्रा' को ही लम्बिका-योग के नाम से जाना जाता है। अभ्यासकर्त्ता सिद्धि और शक्ति प्राप्त कर लेता है। मन पर विजय पाने में इससे बड़ी सहायता मिलती है।

खेचरी-मुद्रा के अभ्यास में सफलता मिल गयी तो भूख और प्यास जाती रहती है। साधक प्राण पर विजय पा लेता है। खेचरी-मुद्रा सभी मुद्राओं में प्रधान है। इसमें 'छेदन' और 'दोहन' दो क्रियाओं का अभ्यास करना पड़ता है। जीभ के निचले हिस्से को सप्ताह में एक बार काटना पड़ता है। बाद में

हल्दी का पिसा हुआ चूर्ण उसके ऊपर छिड़कना चाहिए। य
प्रक्रिया कुछ महीनों तक दोहराई जाती है। इसका नाम
'छेदन-क्रिया'।

इसके बाद जीभ पर मक्खन लगाया जाता है और जीभ व
दुहा जाता है। जीभ को लम्बी करने का यह उपाय है। इसव
'दोहन-क्रिया' कहते हैं।

जब जीभ काफी लम्बी हो जाय तो साधक उसे पीछे फिर
कर नासिकान्तर मार्ग को अवरुद्ध कर देता है और ध्यान
बैठ जाता है। स्वभावतः ही श्वास-क्रिया बन्द हो जाती है।

कुछ लोग जन्म से ही लम्बी जीभ वाले होते हैं; उनक
छेदन और दोहन क्रियाओं का अभ्यास नहीं करना पड़ता।

केवल वे लोग ही इस योग के अभ्यास से लाभान्वित हो
सकते हैं, जो पवित्र मन वाले हैं तथा जो दैवी गुणों का परि-
पालन कर रहे हैं। इच्छा, तृष्णा, लोभ और काम से विरक्त
होकर, वैराग्य, विवेक और तीव्र लगन के कारण जिनकी रग-
रग में जोश उमड़ रहा है, वे ही इस क्रिया से सच्चे लाभ की
प्राप्ति कर सकते हैं।

कुछ लोग इस मुद्रा में पारङ्गत होकर अपने को 'भू-समाधि'
दे देते हैं

प्रिय वत्स, भक्ति का मार्ग श्रेयस्कर है। लम्बिका-योग
तुम्हारे लिए नहीं। यह दुःखकर योग है। यह विद्या है, पर
तुम्हारे लिए नहीं है। सरल योग द्वारा महान् पद की प्राप्ति
करना सच्चे ज्ञानी का लक्षण है।

---*---

जपयोग

ार-बार एक ही मन्त्र का उच्चारण करना जप कहलाता है। धर के नाम में अनन्त शक्तियां हैं। मानसिक जप में महान् क्ति है। बहते जल में खड़े होकर जप करने से आध्यात्मिक क्ति का जागरण होता है। जप आपकी जीवनचर्या का एक ङ्ग बन जाना चाहिए। जप में अनुष्ठान और पुरश्चरण को त्यन्त महत्व दिया गया है।

ोक्षप्रिय ने कहा—

हे भगवन्, अब आप मुझे जपयोग की दीक्षा दीजिए।

ःवामी शिवानन्द जी कहते हैं—

परमात्मा के नाम का निरन्तर मनन और उच्चारण ही जप है। परमात्मा के एक-एक नाम में अनन्त शक्तियाँ रहती है। निरन्तर जप करने से जपयोगी के लिए उन शक्तियों का भण्डार खुलने लगता है।

जप तीन प्रकार से किया जाता है। उच्च स्वर से जप करने को 'वैखरी' जप कहते हैं। फुसफुसा कर जप करने को 'उपांशु' की संज्ञा दी जाती है। मन-ही-मन जप करने को 'मानसिक' जप कहा जाता है।

मानसिक जप करते समय मन ही मन परमात्मा के नाम को उच्चरित किया जाता है। दूसरा व्यक्ति सुन नहीं सकता। इसमें महान् शक्ति है, किन्तु नवाभ्यासी को मानसिक जप में कठिनाई का अनुभव होता है। मानसिक जप का प्रभाव अन्य

प्रकार के जपों की अपेक्षा दस सहस्र गुणा अधिक है।

जब मन इधर-उधर भागने लगता है, उच्च स्वरेण जप आरम्भ कर दो। उच्च स्वरेण मन्त्रोच्चारण करने से आपका मन बाहरी ध्वनियों की ओर से हट जायगा। उच्च स्वर से जप करोगे तो धारणा-शक्ति का विकास होगा। जब मन एकाग्र हो जाय, मानसिक जप आरम्भ कर दो।

सभी यज्ञों में जप-यज्ञ की महिमा महान् है। गीता में भगवान् स्वयं कहते हैं कि मैं यज्ञों में जप-यज्ञ हूँ—'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि।'

गङ्गा, यमुना, गोदावरी, कावेरी आदि पवित्र नदियों में खड़े होकर जप करने से अधिक लाभ होता है और जप भी सिद्ध हो जाता है। समर्थ रामदास इसी प्रकार जप किया करते थे।

जप करने के लिए प्रातःकाल ४ से ५ का समय उपयुक्त है। आपको जप में सिद्धि प्राप्त होगी।

यही नहीं कि केवल निश्चित आसन में ही जप करो। चलते, फिरते, खाते, पीते तथा सभी प्रकार के कार्यों को करते हुए, जप करते रहो। जप को अपने जीवन की चर्या का एक अङ्ग बना लो।

कभी-कभी ४० दिन तक जप-अनुष्ठान का परिपालन करो। फल और दूध लो। मौन और ब्रह्मचर्य-व्रत का सम्पालन करो। पवित्र तपोभूमियों में निवास करो। रात-दिन नाम-जप करते रहो। आपको जप-सिद्धि प्राप्त होगी।

पुरश्चरण करो। मन्त्र में जितने अक्षर हैं, उतनी लाख बार उसी मन्त्र को जपो। यह पुरश्चरण-विधान है। 'ओ३म्

नमः शिवाय' में ५ अक्षर हैं, अतः ५ लाख बार इस मन्त्र को जपना चाहिए; तब पुरश्चरण होता है। पुरश्चरण से मन्त्र-सिद्धि प्राप्त होती है। पुरश्चरण की अवधि में ब्रह्मचर्यादि आवश्यक व्रतों का पालन आवश्यक है।

आज के युग में जपयोग अपना विशेष महत्व रखता है। साधक को इसमें कोई कठिनाई नहीं होती है। इस युग में यदि कोई शान्ति का सरल, निश्चय और सत्वर सिद्धि देने वाला तथा सुगम मार्ग है तो वह जपयोग ही है। आज के युगवासियों के लिए कुण्डलिनी योग, वेदान्तिक समाधि, असम्प्रज्ञात समाधि तथेतर योग-सिद्धियाँ केवल मध्य-प्राचीन साहित्यकारों की कपोल-कल्पना ही हैं। जिन लोगों को उनमें कुछ विश्वास है, वे भी उनका अभ्यास कई कारणों से नहीं कर पाते। जो कर रहे हैं, वे कब उनको छोड़ देंगे, कहना कठिन नहीं; किन्तु जपयोग आस्तिक और नास्तिक, दोनों के लिए समान रूप से सरल और प्रभावशाली है। इसकी वैज्ञानिक प्रक्रिया पर आज का वैज्ञानिक संसार भी हामी भरता है। 'जप में क्या शक्ति है और क्यों?' इसका उत्तर आज के युग का प्रत्येक वैज्ञानिक दे सकता है। तब आज से ही, अपने को, क्यों न इस योग में दीक्षित करें?

सब योगों का महायोग यह

मनुष्य में विचार, अनुभव और सङ्कल्प की क्रिया वर्त्तमान है अतः उसे हृदय, बुद्धि तथा कर्मशक्ति का विकास करना पड़ता है। इन तीनों से सम्बन्ध रखने वाले जो त्रिदोष हैं, उनके निवारण करने के लिए कर्मयोग, भक्ति और ज्ञानयोग के अभ्यास की आवश्यकता है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

समझ गया, समझ गया। अब महायोग का वर्णन कीजिए, जिसका उपदेश आप सदा देते आ रहे हैं। मैं महायोग में आस्था रखता हूँ।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

इस युग में महायोग महान् योग है। व्यक्ति-व्यक्ति के लिए इसका विधान बतलाया जा सकता है।

मनुष्य में तीन प्रकार की शक्तियाँ सदा कार्य करती हैं। मनुष्य सोचता है, अनुभव करता है और सङ्कल्प भी करता है। तीन शक्तियों का उसमें समावेश रहता है। इन तीन शक्तियों के तीन केन्द्र हैं। वे हैं : हृदय, बुद्धि और क्रियाशीलता। इनके द्वारा ही तीनों शक्तियों का प्रकटीकरण होता है।

इन तीनों का स्थान मनुष्य-जीवन में समानान्तर है। यदि एक के सञ्चालन में हलकापन आया तो शेष दोनों में विकार आ जाता है। महायोग के अभ्यास से तीनों को समानान्तर

क्रियाशील बनाया जाता है; तीनों का समन्वय किया जाता है, जिससे विपर्यय न हो।

मन में तीन दोष हैं : मल, विक्षेप, और आवरण। इन त्रिदोषों का निवारण करने के लिए तीन प्रकार की रीतियाँ बरतनी पड़ती हैं। जिस प्रकार काँटे को सूई से ही निकाला जाता है (तलवार से नहीं), उसी प्रकार इन तीनों को पराभूत करने के लिए उचित रीति बरतनी पड़ती है।

महायोग अपनी विशिष्ट रीति द्वारा दमन के इस कार्य को पूरा करता है। वह निष्काम कर्मयोग द्वारा मल का निराकरण करता है, उपासना अथवा भक्ति द्वारा मन के विक्षेपों को निर्मूल कर देता है तथा आवरण का निवारण करने के लिए वेदान्तिक साधना की रीति बतलाता है; जिसमें विचार, चिन्तन और स्वाध्याय का स्थान है। इस प्रकार तीनों योगों के महायोग से चित्त के तीनों दोषों को दूर कर, जीवन के तीनों दिव्य गुणों का विकास और मनुष्य की त्रिगुणात्मिका प्रकृति को मनोनीत मार्ग की ओर अग्रसर भी किया जा सकता है।

हठयोग का किञ्चित् अभ्यास करने से शरीर स्वस्थ रहेगा। राजयोग के अभ्यास से मन पर विजय पा सकोगे। उपासना और कर्मयोग के अभ्यास से मन को पवित्र कर, वेदान्तिक साधना की ओर अग्रसर भी हो सकोगे। सङ्कीर्तन करने से आपके मन को विविध विचारों से अवकाश मिलेगा और आराम भी; यही महायोग है।

महायोगी जीवन के सभी अङ्गों का समानान्तर विकास करता है। महायोग आज के व्यस्त जीवन को शान्ति की ओर

ले जाता है। हमारे शास्त्र इसी योग की व्याख्या करते आ रहे हैं। अच्छा हो, आज हम उनके उपदेशों को समझ कर, इस योग को अपनायें। व्यर्थ ही अनेकों योगों में अपना जीवन न बिता कर, हम, आज और अभी से ही, अपने मन, अपनी बुद्धि और क्रियाशीलता को योगमय करें। तभी हम जीवन को भौतिक जीवन के बीच भी दिव्य जीवनमय कर सकते हैं।

सप्तम अध्याय

ज्ञानयोग की व्याख्या

ज्ञानयोग सभी योगों का चरम विकास है

ज्ञानयोग सभी योगों का चरम विकास है। ज्ञानयोग से अविद्या का निवारण होता है तथा जीव अपने को जीव न समझ, ब्रह्म की व्यापकता का अनुभव करता है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे स्वामिन्, मुझे आपके उपदेशामृत से अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति हो रही है। अब आप मुझे ज्ञानयोग में दीक्षित कीजिए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं -

जब मनुष्य में ज्ञान का विकास होता है, तब ज्ञानयोग का प्रारम्भ होने लगता है। इसे सभी योगों का चरम विकास माना गया है। दूसरे शब्दों में इसे 'केवल-अद्वैत-वेदान्त' कहा जाता है।

ज्ञानयोग का सारांश है कि जीव वास्तव में महान् आत्मा है।

ज्ञानयोग से हमें ज्ञान होता है कि 'हम माया के कारण अपने को शरीर तथादिक इन्द्रियों के आधीन रखते आये हैं; वास्तव में हम परमात्मा हैं।'

हम अविद्या के कारण अनुभव करते हैं कि 'हम मनुष्य हैं; जन्म, जरा तथा मृत्यु के बन्धन में हैं और कार्य-कारण के आधीन हैं।' ज्ञानोदय होने से इस अविद्या का परिहार होता है। हम अनुभव करने लगते हैं कि 'हम महान् शक्ति के आदि कारण हैं।' तब हम ज्ञानावस्था में अवस्थित हो जाते हैं।

इस मार्ग पर चलने वाले साधक को चारों साधनों से सम्पन्न होना चाहिए। वे चार साधन हैं: विवेक, वैराग्य, षट्-सम्पत् और मुमुक्षुत्व। सत् और असत् में अन्तर जानना चाहिए; यह विवेक है। लोक-पदार्थों से विरक्ति होनी चाहिए; भोग-विलास से दूर रहने की तीव्र आकांक्षा भी; यह वैराग्य है। शम, दम, तितिक्षा, उपरति, श्रद्धा और समाधान षट्-सम्पत् के अन्तर्गत हैं। मोक्ष प्राप्त करने की लौ अर्थात् लगन को मुमुक्षुत्व की संज्ञा दी जाती है।

इन गुणों से विभूषित होने पर, सद्गुरु के पास जाना चाहिए, जो ब्रह्मनिष्ठ हों और ब्रह्मश्रोत्रिय भी। उनसे श्रुति-सार जानना चाहिए। उनके उपदेशों का मनन करना चाहिए; अप्रतिहत विचार भी। इस प्रकार ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञानयोग का अभ्यासी सात भूमिकाओं (अवस्थाओं) को पार करता है। वे अवस्थाएं हैं: शुभेच्छा, सुविचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थभावना और तुरीय।

आत्म-विवेचन

आत्मा प्रत्येक के अन्दर विराजमान है। आत्मा ही विश्व का एकमात्र सत्य है। मन, प्राण, इन्द्रियादि के व्यापार आत्मा के अन्दर ही हो रहे हैं। आत्मा सब में व्यापक है। आत्मा ही प्राणों का सञ्चालन करता है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे स्वामिन्, मुझे आत्म-विवेचन का उपदेश दीजिए। आत्मा क्या है और कैसा है?

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

आत्मा सर्वत्र विराजमान है। यह आत्मा विश्व, प्राण, इन्द्रिय और शरीर का आधार है। आत्मा सच्चिदानन्द है। अस्ति, भाति और प्रिय आत्मा के ही गुण हैं। आत्मा में ही यह जगत् भासता है।

आत्मा को शस्त्र नहीं छेद सकते, आग नहीं जला सकती, पानी नहीं भिगो सकता और वायु नहीं सुखा सकती। यह अव्यय और निर्विकार है। सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम है यह और महान् से भी महत्तम है।

क्या चींटी और क्या कुत्ता, क्या चाण्डाल और क्या राजा, किसान और जमींदार, सन्त और दुर्जन—सभी में निःसन्देह यही आत्मा निवास करता है।

मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों के व्यापार आत्मा तक नहीं पहुँच

ाते। यह सब से परे है। आत्मा अमर है, अक्षय है, अव्यय है ौर परम पवित्र भी। स्वतन्त्र और नित्यपूर्ण है यह।

आत्मा सत्य है, ज्ञान है और अखण्ड है। आत्मा में द्वैत ाहीं। यह सबके अन्तर का वासी है। आत्मा को पाप नहीं छू सकते। समय भी आत्मा को सीमित नहीं कर सकता। यह आत्मा परिच्छेदों से मुक्त है। आत्मा मरता नहीं, जन्मता भी नहीं। आत्मा को किस नाम से पुकारा जाय? आत्मा की कोई जाति नहीं, कोई शरीर नहीं। घट-घट में व्यापक है यह।

आत्मा का विवेचन इसी प्रकार किया जाता है। जितने गुण तुम संसार में देख चुके हो, तथेतर जितने गुण संसार में वर्त्तमान हैं, आत्मा उन सब से परे है; किन्तु आत्मा पर ही उन सब की सत्ता निर्भर है। जिस प्रकार दूध से बनी सभी मिठाइयों में दूध को ही सर्वव्यापक जाना जाता है, उसी प्रकार संसार में स्थित सभी गुणों का आधार आत्मा में है।

शरीर-नाश हो जाने पर भी इसका नाश नहीं होता। बीमार व्यक्ति में स्वस्थ आत्मा सदा व्यापक है। सन्त में और दुर्जन में भी एक ही आत्मा है, भिन्न-भिन्न नहीं। भेद-भाव तो हमारे मन की उपज हैं। आत्मा में कोई भेद-भाव नहीं। जिस प्रकार एक तागा सारी माला को एक रूप में सजाता है, उसी प्रकार एक ही आत्मा में सभी भेद-भाव और सभी मत-मतान्तर सूत्रित हैं। आत्मा न हो तो उनकी सत्ता भी नहीं होगी। आत्मा के प्रकाशित होने पर ही वे प्रकाशित होते हैं।

सूर्य और चन्द्रमा तथा तारों में आत्मा की ज्योति है।

जीवन में आत्मा ही संप्राणित है। आत्मा के अतिरिक्त, सच पूछो और जानो तो और कुछ है ही नहीं।

ज्ञानीजन इसी अनुभव को ज्ञान कहते हैं; उसे ही आत्म-ज्ञान कह कर, वे धन्य हो गये।

माया का उदय

ाया क्या है—यह विचार करना ही नहीं चाहिए। अनुचित ीति से वस्तुओं की सत्ता का निश्चय करना ही माया है। माया े कारण पर विचार न कर, माया-निवारण के लिए साधना करो। माया अनिर्वचनीया है। परमात्मा की कृपा होगी तो ाया को तर सकोगे। ज्ञान की प्राप्ति होते ही, माया को, आप ्पष्ट जान सकोगे।

ोक्षप्रिय ने कहा—

तव भगवन्, माया क्या है, जो जीवों को निरन्तर भ्रम में ालती रहती है?

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

ज्ञान के प्राप्त हो जाने पर माया का तरण कर लिया जाता है। जब तक ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, माया के कार्यकलापों ा ज्ञान भी नहीं होता। शब्दों से पूछो तो वे भी माया की ्याख्या नहीं कर सकेंगे। ज्यों ही साधक में ज्ञान की चेतना ागती है, त्यों ही माया का अन्धकार फट जाता है। साधक सब कुछ जान लेता है।

सत्य पदार्थ को भूल कर असत्य पदार्थ में रमण करना ही माया है। तुम जानते हो कि सदाचारपूर्वक रहना चाहिए, किन्तु पद-पद कुकर्म करते जाते हो; यही माया है। तुमको मालूम है कि संसार में सभी पदार्थ नश्वर हैं, किन्तु तब भी उन पदार्थों को पाने का प्रयत्न करते हो; यही माया है। तुमसे

जब कहा जाता है कि सदा सत्कार्य और सद्विचार करते रहो तो तुम राजी हो जाते हो; किन्तु पुन:, भूल कर, कुकर्म और कुविचारपरायण हो जाते हो; यही माया है।

जब तक तुम लोकवाद से परे नहीं चले जाते, तब तक माया को पराभूत नहीं कर सकोगे। लोकवाद से ऊपर उठो; माया स्वत: काफूर हो जायगी। प्रकाश को हाथों में लेकर देखो और जानो कि वह तो रस्सी थी, साँप नहीं; साँप का भ्रम जाता रहता है। केवल रस्सी ही शेष रहती है। यही माया का निवारण है।

लोकवाद की सभी उपाधियों से ऊपर उठ कर, परमात्मा के चरणों की उपासना करो। माया के कार्यकलापों को निष्फल करने का यही एक अमोघ अस्त्र है।

आनन्द, अमृतत्व और मुक्ति

आनन्द किसे नहीं चाहिए, अमरत्व की चाह कौन नहीं रखता और कौन ऐसा है जिसे मुक्ति की कामना नहीं ? ढाई अरब मनुष्यों से पूछा जाय; कोई भी 'हमें नहीं चाहिए यह सब' कहने का साहस नहीं कर सकता।

मोक्षप्रिय ने कहा—

तब आनन्द क्या, अमरत्व और मुक्ति क्या ? क्या सभी उनकी कामना करते हैं ?

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

इस संसार में प्रत्येक को इन तीनों की कामना युगों से होती आयी है। मनुष्य ही क्यों, अन्य जीव भी जन्मजात संस्कारों के कारण (स्वभावत:) इन्हीं की प्राप्ति के लिए उन्मुख दिखलायी देते हैं। छोटे-से-छोटा जीव भी स्वभावत: आनन्द की ओर ही उन्मुख होता है; भले ही उसमें आनन्द के रूप और आनन्द के ज्ञान का अभाव हो।

मनुष्य को ही देखिए। वह महान् भवनों का निर्माण कराता है, विवाह करता है और सन्तति-प्रजनन करता है; धन-सञ्चय करता है; उपाधियों को पाने अमेरिका तक उड़ जाता है— इसी प्रकार के अनेकों ऐसे कार्य करता है, जिनसे हम यह समझते हैं कि वह आनन्द की ओर उन्मुख है और उसे पाने के लिए सचेष्ट है।

शान्ति किसे नहीं चाहिए ? सभी शान्ति के लिए दिन-

रात अनेकों प्रयत्न करते रहते हैं। पति पत्नी से मीठी बातें करता है। पिता पुत्र के गाल चूमता है। भाई बहिन से प्रेम करता है। कर्मचारी दिन भर कुर्सियाँ तोड़ते हैं। क्यों? शान्ति पाने के लिए। विचार कर देखो। यही सत्य है। यहाँ तक कि खाना, पीना, सोना और सभी क्रियाओं का आदि कारण है शान्ति।

इसी प्रकार सभी मनुष्य शान्ति के लिए अनेकों बाहरी प्रयत्न करते आ रहे हैं; किन्तु सब कुछ होने पर भी वे गलत रास्ते पर ही हैं। इन सब प्रयत्नों से शान्ति की प्राप्ति अशान्ति के ही समान है। लौकिक प्रयत्नों से शान्ति की आशा निराशा से भी बढ़ कर है। बाहरी पदार्थ कभी शान्ति नहीं दे सकते।

अब हम ऐसे एक विज्ञान का ज्ञान करते हैं, जो हमें सच्ची शान्ति का तत्त्व उपदिष्ट करेगा। लौकिक कार्यों से मुख मोड़ कर, लौकिक सफलताओं को तुच्छ समझ कर तथा लौकिक आनन्दों को दुःखमय जान कर ही, हम सच्ची सफलता, सच्ची शान्ति और सच्चा आनन्द प्राप्त कर सकेंगे।

नित्य-तृप्ति के लिए हमें सभी इच्छाओं का दमन करना होगा। सच्ची शान्ति के लिए लोकानन्द को तिलाञ्जलि देनी होगी। परिपूर्णता की प्राप्ति के लिए सभी अपूर्ण आनन्दों को यहीं छोड़ देना होगा। सच्चे ज्ञान के लिए अज्ञान को अवकाश दे देना होगा। देव बनना चाहते हो तो मनुष्य के चोले को यहीं रख जाओ। स्वतन्त्र बनना चाहते हो तो अपनी परतन्त्र वृत्तियों को यहीं छोड़ जाओ। शान्ति पाना चाहते हो तो क्यों अशान्त बन कर विफल प्रयत्न कर रहे हो? चुप हो जाओ, शान्त हो जाओ। यही तो शान्ति है, यही तो आनन्द है।

विचार

विचार-शक्ति के ही कारण मनुष्य और पशुओं में अन्तर होता है। विचार से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। विचार के अनेकों रूप हैं। सुविचार, ब्रह्मविचार और निर्विचार।

मोक्षप्रिय ने कहा—

हे स्वामिन्, विचार की व्याख्या कीजिए।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

विचार, सुविचार और ब्रह्मविचार एक ही कार्य का बोध कराते हैं। यहाँ पर विचार का अर्थ है, आत्मा के विषय में सोचना।

यह जगत् कैसे उत्पन्न हुआ; कौन इसका स्रष्टा है; इसका उपादान कारण कौन है; बन्धन क्या और मुक्ति किसे कहते हैं; अविद्या से क्या तात्पर्य है; जीव तथा परमात्मा का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है; व्यक्ति और विश्व का पारस्परिक सम्बन्ध क्या है—इस प्रकार के सोचने को विचार कहा जाता है।

ज्ञानी पुरुषों के आदर्श का पालन और आत्मिक मनन—इन दोनों से विचारों को नवजीवन मिलता है।

ब्रह्मविचार ज्ञानयोग की दूसरी भूमिका है। अनवरत गति से ब्रह्म का चिन्तन करना ब्रह्मविचार है।

मोक्षद्वार पर चार प्रहरी हैं। विचार उनमें एक है।

विचारपरायण होने से अन्य तीनों (सत्सङ्ग, सन्तोष और शान्ति) आपकी सेवा में सदा उपस्थित रहेंगे और आपको अन्दर जाने की अनुमति भी मिल जायगी।

विचार करने के लिए पवित्र मन, तीव्र लगन, सूक्ष्म विश्लेषण और एकाग्र बुद्धि की आवश्यकता है।

विचार-शक्ति से हममें और पशुओं में अन्तर पड़ जाता है। हममें विचार-शक्ति को यथाशक्ति बढ़ाया जा सकता है। पशुओं के अपने विचार नहीं होते। स्वभाव के बल ही उनके कार्यकलाप चला करते हैं।

यदि निरन्तर विचार किया जाय तो ब्रह्मज्ञान का अनुभव होने लगता है। अनवरत चिन्तन करने से, साधक में, एक प्रकार की वृत्ति का उदय होता है, जिसे ब्रह्माकार-वृत्ति कहते हैं। ब्रह्माकार-वृत्ति में अविद्या-लेश नहीं रहता।

विचार-शक्ति को बल देने के लिए वेदान्तिक पुस्तकों का स्वाध्याय करना चाहिए। उपनिषद्, विवेकचूड़ामणि, योग-वाशिष्ठ, पञ्चदशी आदि के अध्ययन से आप अपने विचारों को आध्यात्मिक बल दे सकते हैं। इस प्रकार विचार-शक्ति में शक्ति-सञ्चार करो। सत्वरतः ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो जायगी।

विवेक-बुद्धि

मन में जब यह भावना पक्की हो जाती है कि 'ब्रह्म ही सत्य है', उसी समय विवेक का जन्म होता है। वैराग्य के कारण साधक में जिस भावना का उदय होता है, वही भावना विवेक-बुद्धि के नाम से प्रख्यात है।

मोक्षप्रिय ने कहा —

हे स्वामिन्, ज्ञानयोग की विवेचना करते समय, आपने कहा था, "विवेक ज्ञानयोग के चारों साधनों में प्रथम साधन है"— क्या आप विवेक पर कुछ प्रकाश डालेंगे ?

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं —

आप जगत् को सत्य समझ कर, मायाजाल को ही आनन्द का केन्द्र समझते हो, यह अविवेक का लक्षण है। ज्ञानी जगत् के सभी व्यापारों को असत्य समझ कर, मायाजाल से दूर हटना चाहता है, यह विवेक का लक्षण है। आपको किस प्रकार मालूम हुआ कि यह विष है, जीवनहारी है तथा यह अमृत है, जीवन को अमर कर देगा ? जिस बुद्धि द्वारा आप इसका निर्णय करते हैं, उसे विवेक-बुद्धि कहा जाता है। दुनियाँ के व्यापारों में जो व्यक्ति समझ-बूझ कर और सँभल कर कार्य करता है, वह विवेकपूर्वक कर्म कर रहा है।

जब संसार की नश्वरता साक्षात् भासने लगती है और ब्रह्म ही सत्य दीखने लगता है और जब यह निश्चय हो जाता है कि

पूर्वपक्ष असत्य है तो उस समय हममें विवेक-बुद्धि वर्तमान रहती है।

किसमें और कब विवेक का उदय होगा, कहा नहीं जा सकता। इसमें परमात्मा की कृपा प्रमुख है; कृपा बिना विवेक का उदय होगा, यह असम्भव है; किन्तु इतना मानते हैं कि जन्म-जन्मान्तरों में सुकृत करने से जो भावना हममें जागती जा रही है, वही विवेक-बुद्धि है। कई बार हमने लोगों को यह कहते सुना है कि 'अमुक व्यक्ति प्रत्येक कार्य विवेक-बुद्धिपूर्वक करता है।' इसका अर्थ होता है कि अमुक व्यक्ति अच्छे काम कर रहा है। सोच-समझ कर भी, यदि कुकार्य किये जायें तो उनको विवेकपूर्ण नहीं कहा जा सकता। बहुत से लोग कई दिनों तक योजनाएँ बनाते रहते हैं; किन्तु अन्त में कुकार्य कर बैठते हैं। इसका अर्थ यह कि उनकी विवेक-शक्ति ठोस आधार पर खड़ी नहीं है। "विवेक फेल हो गया है"—यह उक्ति तभी सुनने में आती है।

जब विवेक का उदय होता है, साधक निरहङ्कार और निस्पृह बन जाता है।

जिस प्रकार तलवार से प्रतिपक्षी को छिन्न-मस्तक किया जा सकता है, उसी प्रकार विवेक के अभ्यास से सांसारिक वासनाओं, महत्वाकांक्षाओं, विविध प्रापञ्चिक प्रवृत्तियों को आहत कर दिया जाता है। विवेक ज्ञान-चक्षु को खोलता है। दूसरे शब्दों में यह ज्ञान-चक्षु का आन्तरिक प्रभाग है। जागतिक व्यवहारों में रमते हुए मन को अन्तर्मुख कर, उसे पवित्र रखने का श्रेय सर्वप्रथम विवेक को है।

जब-जब आपकी इन्द्रियाँ विषयों की ओर भागने लगें, तब-

तब विवेक का डण्डा अपने हाथों में ले लो। इन्द्रियाँ स्वतः शान्त हो जायेंगी।

विवेक का सही अर्थ है, आत्मा में अपनी भावना को प्रतिष्ठापित किये रहना और जागतिक व्यापारों को सदा नश्वर समझना।

जिस व्यक्ति में विवेक है, वह आध्यात्मिक साधना में सफलता का श्रेयभागी बनता है। यही शास्त्रों का कथन है।

वैराग्य

मन को निर्विषय बना लो। विषयों से निर्लिप्त रहो। यह वैराग्य है। वैराग्य बन्धनों को तोड़ता है। देखो तो सही, संसार नश्वर है, फिर क्यों उसके पीछे अपने जीवन को गँवाएं? यह भावना वैराग्य है और तदनुसार अभ्यास करना वैराग्य का अभ्यास है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

गुरुदेव, अब वैराग्य की भी विवेचना कीजिए। यही तो 'साधन-चतुष्टय' में दूसरी साधना है।

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं—

मन की इच्छा और मोहरहित भावना को वैराग्य कहते हैं। वैराग्य एक प्रकार का सदाचार है। राग से मनुष्य बन्धनगत होता है और वैराग्य से विमुक्त। वैराग्य मनुष्य को नित्यमुक्त कर देता है।

देखो तो सही, संसार में आनन्द है ही कहाँ? जन्म, जरा, व्याधि तथा मृत्यु से ही तो यह जीवन आवृत है; जहाँ देखो और जिसे भी देखो, वही दुःख की बातें करता है; इस प्रकार की भावना से वैराग्य होता है।

विवेक-बुद्धिजन्य वैराग्य साधक को नश्वर पदार्थों की ओर से उदासीन कर देता है।

निराशा के कारण भी मनुष्य को वैराग्य आता है। अपने

आत्मीय के मरने पर भी वैराग्य होता है। यह क्षणिक वैराग्य है। श्मशान में जो वैराग्य होता है, वह कुछ देर तक ही रहता है; किन्तु विवेकजन्य वैराग्य ही सच्चा है, कल्याणकारी है।

इच्छाओं ने मनुष्य को सन्तप्त कर दिया है। मानवता आज इच्छाओं की दासता में बँधी हुई है, अतः जीर्ण-शीर्ण और अस्त-व्यस्त है। आज ही इच्छाओं से मुक्ति मिल जाय तो मानवता का नव-निर्माण क्षणों में सम्भव है; किन्तु इसके लिए सब में व्यापक वैराग्य का अवतरण होना चाहिए।

वैराग्य का अर्थ यह नहीं कि आप नङ्गे रहें और जङ्गलों की ही खाक छानें। अपने मन में उपर्युक्त भावनाओं को बलवती बना कर उनका व्यवहार भी करें।

अच्छी पुस्तकें पढ़ो। सन्तों की सङ्गति करो और कभी-कभी एकान्तवास भी। नश्वर जीवन को सदा हेय जानो। वैराग्य के विना जीवन जीवन ही नहीं सर्वनाश का मार्ग है।

आध्यात्मिक साधना, वैराग्य विना सम्भव ही नहीं। यहाँ तक कि जीवन भी वैराग्य विना दुःखी रहता है। वैरागी का जीवन आनन्दमय जीवन है, क्योंकि उसे किसी वस्तु का लोभ नहीं और न कुछ आशा ही। वह सदा पूर्ण रहता है। वह किसी से झगड़ा नहीं मोल लेता, किसी पर क्रोध नहीं करता और न किसी की हानि ही सोचता है। ऐसा ही व्यक्ति वैरागी है।

वैराग्य मनुष्य-जीवन में एक महान् सद्गुण है, जिसकी प्राप्ति कर लेने पर संसार में और कुछ पाना शेष नहीं रहता। वैराग्य एक महान् सिद्धान्त और व्यवहार है, जिसपर साधक

की साधना अवस्थित है। वराग्य डुला तो जीवन डुला और साधक डुला और साधक की साधना डुली, साथ-साथ साध्य भी सदा के लिए डुला। डांवाडोल परिस्थिति पर काबू पाने के लिए वैराग्य ही एक दृढ़ आधार है।

आत्मज्ञान

आत्मा का परोक्ष ज्ञान ही आत्मज्ञान है। ज्ञानी भय, चिन्ता तथा अन्य उपाधियों से मुक्ति पा लेता है। आत्मज्ञान पवित्रता का अवतरण है। व्यक्ति अपनी सत्ता को जागतिक सत्ता न समझ, आत्म-सत्ता समझने लगता है।

मोक्षप्रिय ने कहा—

देव, हो गया, सब कुछ हो गया। मैंने जान लिया और सब कुछ जान लिया है। मैं आत्म-सत्ता में, अपने को, समासीन होते देख रहा हूँ। मैं समझ चुका हूँ। अब मुझे कृतार्थ करो, देव! धन्य-जीवन करो, पिता!

स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं —

आत्मज्ञान यही है। अपनी सत्ता को पहचानो! आप देह नहीं हो, मन नहीं और न इन्द्रियों के व्यापारों के सञ्चालक हो। आप व्यक्ति नहीं, जीव नहीं, काल, कारण और परिच्छेद में सीमित नहीं, किन्तु सर्वव्यापी अमर आत्मा हो, जो न केवल मनुष्य में, किन्तु प्रत्येक जीव में भी, न केवल जीव में ही, किन्तु सभी पदार्थ-वर्गों में भी और न केवल पदार्थ-वर्गों में ही, किन्तु सभी में समान रूप से अद्वैततः अवस्थित है।

आत्मज्ञान ही जीवन का एक लक्ष्य है। मनुष्य-जन्म केवल इसीलिए हुआ है। अन्य जीवों को यह भाग्य कहाँ?

सभी बहुलताएँ एक हो जाती हैं, सभी पारस्परिक भेद-भाव अदृश्य हो जाते हैं। साधक आत्मस्थित हो जाता है। उसमें एक व्यापक चेतना भासती है। वह अपने को भूल जाता है; उसका व्यक्तिगत स्वत्व नहीं रहता। नमक जल में घुल जाता है और नदियाँ सागर में; उनका अपना स्वत्व शेष नहीं रहता। आज आप जितने नाम-रूप देखते और अनुभव करते हो, वे सब ज्ञानभूमिका में शेष नहीं रहते।

ज्ञानी भय, चिन्ता, माया, अविद्या, अहङ्कार, क्रोध, काम, गर्व और लोभ को तर जाता है। ज्ञानी को परात्परीय ज्ञान का अनुभव होता है। जब अविद्या ही नहीं रही तो भला ज्ञान क्यों न होगा?

आत्मज्ञान का अर्थ किसी वस्तु की सम्प्राप्ति नहीं है। केवल जीव को यह ज्ञान होना है कि मैं अमर आत्मा हूँ। जिस प्रकार सोने के उपरान्त व्यक्ति अपने को जानता है, उसी प्रकार इस सांसारिक बेहोशी और दीर्घ सुषुप्ति के उपरान्त जीव जब चैतन्य की प्राप्ति करता है तो अपने असली स्वरूप को जान लेता है। आत्मज्ञान ज्ञान ही है, प्राप्ति का यहाँ प्रश्न ही नहीं उठता। आप तो आत्मा हैं, किन्तु मायावश यह भूल जाते हैं।

ज्ञानोदय होते ही अविद्या का पर्दा उठ जाता है। मन सत्त्वगुण में लीन हो जाता है। इन्द्रियाँ मन में लीन हो जाती हैं। अब वासनाएँ कहाँ? आत्म-प्रकाश चमकने लगता है। महीनों तक नदी जङ्गलों और पर्वतों और नगरों से होकर बहती रही, किन्तु अन्ततः सागर में मिल गयी, अपना स्वत्व खोकर, किन्तु एक महान् अस्तित्व को जन्म देकर। इसी

प्रकार आत्मज्ञान में एक सत्ता का दमन कर अमर सत्ता को जन्म दिया जाता है। जीव अपने को हार बैठता है, किन्तु अपने आत्मा की शरण लेकर, महाविजयी का सेहरा बँधवाता है।

आत्मज्ञान में एक ही चेतना वर्त्तमान रहती है। द्वैताभास नहीं होता। इस चेतना के अन्दर ज्ञानी की व्यक्तिगत सत्ता लीन हो जाती है। अतः वह सभी आत्माओं का आत्मा, सभी प्राणों का प्राण और सभी जीवों का जीवन हो जाता है। ज्ञान के उपरान्त ज्ञानी ब्रह्म हो जाता है। दोनों में भेद की सम्भावना ही कैसी ?

इसके अतिरिक्त आत्मज्ञान के अनुभव के लिए स्वयं ही चेष्टा करनी होगी। अब तक जो कुछ बतलाया जा चुका है, उसका व्यवहार करना होगा और सच्चे दिल से आध्यात्मिक साधना करनी होगी। यह नहीं कि दिल में कुछ और, करने लगे कुछ और। दिल भी पवित्र रहे और कर्म भी पवित्र। दोनों ओर से पवित्रताओं के अनेकों रूपों का संयोग हो, समन्वय हो; आत्मज्ञान तभी जीवन को धन्यतम कर देता है।

जिसको ज्ञान की प्राप्ति हो चुकी, वह जीवन्मुक्त बन जाता है। संसार की माया उसे डुला नहीं सकती। काम, क्रोधादि वासनाएँ, उसे छूते ही, विदग्ध हो जाती हैं।

जीवन्मुक्त सदा जागृत रहता है। उसकी जागृति हमारी सामान्य जागृति को स्वप्न के समान सिद्ध कर देती है। वह महान् पुरुष समस्त चेतना का भण्डार होता है। उसको देखते ही मनुष्य धन्यतम और पावनतम हो जाते हैं।

उसको न किसी से लेना और न किसी का देना। न उसका

कोई आत्मीय है, न वैरी ही। धन-दौलत, पुत्र-पौत्रादिकों की उसे चाह नहीं। प्रपञ्च न तो उसे सुहाता है और न उसका लेशमात्र अनुभव ही होता है। किसी प्रकार की कामना के न होने से वह नित्यतृप्त रहता है। ऐसे महान् व्यक्ति का आनन्द जन-जीवन का आनन्द बन जाता है। कुछ न करते हुए भी वह सभी समाजों को आत्मा के सुरम्य निकेतन की ओर ले जाता है। आप उसके सिद्धान्तों को मानने के लिए तैयार न भी हों, तो वह परवाह नहीं करता, वह तो अपने साक्षात्कार के आधार पर ही चलता जाता है और उसके पीछे सभी मनुष्य मन्त्रमोहित से होकर चलते हैं। समाज को आगे की ओर ले जाता है वह। समाज यह नहीं जानता; पर कुछ न करते हुए भी वह सब कुछ करता है। जीवन्मुक्त इस संसार के सच्चे नेता हैं, मानव-जीवन के सच्चे सम्राट् हैं और मानवता के सच्चे हितैषी हैं।

उनका अपना सम्प्रदाय नहीं होता। सभी सम्प्रदाय उनको मानते हैं। सम्प्रदायों से न तो उनका विरोध होता है और न वे किसी सम्प्रदाय के पक्षपोषक होते हैं। वे जन-समाज को पेचीदे मार्ग से नहीं ले जाते, किन्तु उसी सुन्दर और मणिमय मार्ग से ले जाते हैं, जिस मार्ग पर वे चल चुके हैं। उनकी उपस्थिति सन्तप्त-स्वान्त मानव-समाज को शीतलता से आपूरित कर देती है। ज्ञानी सचमुच 'एक-दो' नहीं, 'एक-आध' ही हुआ करते हैं। सभी ज्ञानी नहीं होते। ज्ञानी बनना, असम्भव न होते हुए भी, मजाक नहीं है कि पुरश्चरण करके भगवान् मिल जायें और पोटली से कुछ विभूति निकाल कर हमें दे दें और हमें ज्ञान की प्राप्ति हो जाय। अनेकों जन्मों में सिद्धि पाते-पाते, अन्ततः सच्ची सिद्धि मिलती है। गीता में कहा है कि सहस्रों मनुष्यों में कोई विरला ही सिद्धि की प्राप्ति

करता है और जो सिद्ध हो चुके हैं, उनमें कोई बिरले ही भगवान् को सही रूप में जान पाते हैं।

अतः स्मरण रखो कि ज्ञान को प्राप्त करना ही मनुष्य-जीवन का सही लक्ष्य है। इसके अतिरिक्त यदि आप किसी और लक्ष्य की ओर जा रहे हैं तो भूल रहे हैं और भटक रहे हैं; सम्भवतः आप सदा के लिए खो न जायें।

उपसंहार

मोक्षप्रिय उवाच

मोक्षप्रिय ने कहा —

हे गुरुदेव, मैं धन्य हो गया। आपने मुझे उपदेश देकर सत्यतः कृतार्थ किया है। आज मुझे सब कुछ प्राप्त हो चुका है। मेरे संशय निवृत्त हो चुके हैं। मेरी वृत्तियाँ शान्त हो चुकी हैं। मेरा मन स्फटिकवत् हो गया है। अब विक्षेप नहीं। मल का भी पराभव हो चुका है। असत्य मुझसे दूर चला गया है।

आपकी उपदेश-प्रणाली अद्भुत है। मेरे हृदय में वह मधुर-वीणा अभी भी गूंज रही है। उस वीणा का सङ्गीत कोमल है, मधुर है, हृदयग्राही और शक्तिमय है। क्या मैं इस संसार में कहीं और कभी आपके समान गुरु पा सकूंगा ? आप जगद्गुरु हैं।

मेरे अज्ञान-ध्वान्त ध्वंस हो चुके हैं। ब्रह्मज्ञान का अवतरण हो चुका है। मैं आनन्दमय हूँ और चिदानन्दमय हूँ। मुझे सहज समाधि का अनुभव होने जा रहा है।

मैं आपके ऋण से उऋण नहीं हो सकूँगा। आपने मुझे आत्म-सम्राट् बनाया है। आपने मुझे निर्भय कर दिया है। मैं आपके चरणों में कौन-सी दक्षिणा अर्पित करूँ !

मैंने संसार-सागर का तरण कर दिया है, अगाध और अपार सागर का तरण कर दिया है; भयङ्कर जन्तुमय सागर को पार कर लिया है।

आपके चरणों में अनन्त कोटि बार प्रणाम।

तब स्वामी शिवानन्द जी कहते हैं :

आप जान गये हैं, वत्स मोक्षप्रिय ! आप जान गये हैं !! अब इस ज्ञान का प्रचार करो। महायोग का प्रचार करो। जनसमाज में वेदान्त का प्रचार न करो। साधारण लोग वेदान्त के सिद्धान्तों को ठीक रूप से न समझ कर, उनका उलटा अर्थ लगाते हैं। अतः हानि की सम्भावना अधिक है। चुने हुए लोगों को ही वेदान्त का उपदेश दो। जनता के लिए सङ्कीर्तन, भक्तियोग, जप, नाम-स्मरण और कर्मयोग की प्रक्रियाओं का प्रचार करो।

गीता, रामायण और भागवत की कथा करो। सबको आसनों के अभ्यास से परिचित कराओ। रुचि के अनुसार योग का उपदेश दो। एक ही दवाई सभी रोगियों के लिए हितकर नहीं होती।

जैसा मैंने कहा, वैसा करो ! यही मेरी दक्षिणा है !! यही आप मुझे भेंट करें !!!

मोक्षप्रिय ने कहा : ऐसा ही करूँगा।

परिशिष्ट

साधना-तत्त्व

अर्थात्

सप्त-साधन-विद्या

(मनुष्य की शीघ्र उन्नति तथा उसके विकास के लिए शास्त्रोक्त साधनों का सार)

भूमिका

(क) हजारों टन सिद्धान्तों के ज्ञान से एक ग्राम भर साधनों का आचरण अधिक लाभप्रद है। इसलिए अपने दैनिक जीवन में योग, धर्म एवं दर्शन-शास्त्रों में बताये हुए साधनों का अभ्यास कीजिए, जिससे मनुष्य-जीवन के चरम लक्ष्य—आत्मसाक्षात्कार—की प्राप्ति हो।

(ख) इस साधन-पट में उपर्युक्त साधनों का तत्त्व एवं सनातन धर्म का विशुद्ध स्वरूप ३२ शिक्षाओं द्वारा दिया गया है। इनका अभ्यास वर्तमान काल के अत्यन्त कार्यव्यस्त लोगों के लिए भी सुगम है। इनके समय और परिमाण में आव-

श्यकतानुकूल परिवर्तन कर लीजिए और इनकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाते जाइए।

(ग) आरम्भ में इनमें से थोड़ी ऐसी शिक्षाओं के पालन का सङ्कल्प कीजिए, जिनसे आपके स्वभाव और चरित्र में थोड़ा निश्चित सुधार हो। यदि किसी दिन बीमारी, सांसारिक कामों की अधिकता या किसी अनिवार्य कारण से आप निश्चित साधनों को न कर सकें तो उनके बदले यथासम्भव अधिक से अधिक ईश्वर-नाम-स्मरण या जप कीजिए।

(१) आरोग्य-साधना

१. **मिताहार**—आधा पेट खाइए। हलका और सादा भोजन कीजिए। भोजन करने से पूर्व उसे भगवान् को अर्पण कीजिए। सन्तुलित आहार लीजिए।

२. **रजस्तमोवर्द्धक पदार्थों का त्याग**—जहाँ तक सम्भव हो मिर्च, मसाले, इमली आदि राजसिक पदार्थों का सेवन कम कीजिए। चाय, काफी, धूम्रपान, मांस, मछली तथा शराब का सर्वथा त्याग कीजिए।

३. **व्रत-उपवास**—एकादशी के दिन उपवास कीजिए, अथवा केवल दूध, कन्द और फल थोड़ा खाइए।

४. **आसन-व्यायाम**—योगासन या शारीरिक व्यायाम प्रतिदिन १५ से ३० मिनट तक कीजिए। प्रतिदिन दूर तक टहलने जाइए या श्रमदायक कोई खेल खेलिए।

(२) प्राणशक्ति-साधना

५. **मौनव्रत**—प्रतिदिन दो घण्टे तथा रविवार को चार से आठ घण्टे तक मौन रहिए।

६. **ब्रह्मचर्य-व्रत** अपनी आयु तथा परिस्थिति के अनुसार ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कीजिए। शुरू के महीनों में एक बार से अधिक ब्रह्मचर्य भङ्ग न करने का सङ्कल्प कीजिए। धीरे-धीरे घटा कर वर्ष में एक बार तक ले आइए। अन्त में जीवन भर के लिए ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा कीजिए।

(३) चरित्र-साधना

७. **सत्य**—सत्य, मधुर, हितकर और अल्प भाषण कीजिए।

८. **अहिंसा**—मन, वचन और कर्म से किसी को कष्ट न पहुँचाइए। प्राणीमात्र पर दया-भाव रखिए।

९. **आर्जव**—सब लोगों से सरलता, निष्कपटता और खुले दिल से बरताव तथा बातचीत कीजिए।

१०. **ईमानदारी**—ईमानदार बनिए। अपने परिश्रम (पसीने) से कमाई कीजिए। अन्याय व अधर्म से मिलने वाला किसी का धन, वस्तु या उपकार मत स्वीकार कीजिए। सज्जनता और चरित्र का विकास कीजिए।

११. **क्षमा**—जब आपको क्रोध आ जाय, तब उसे धैर्य, शान्ति, दया, प्रेम और सहिष्णुता द्वारा दबा दीजिए। दूसरों के अपराध भूल जाइए और उन्हें क्षमा कर दीजिए। लोगों के स्वभाव और संयोगों के अनुसार बरताव कीजिए।

(४) इच्छाशक्ति-साधना

१२. **मन-संयम**—प्रति-वर्ष एक सप्ताह या एक महीने तक शक्कर या चीनी का और रविवार को नमक का त्याग कीजिए।

१३. कुसङ्ग-त्याग—ताश, उपन्यास, सिनेमा और क्लबों का त्याग कीजिए। दुर्जनों की सङ्गति से दूर भागिए। नास्तिक या जड़वादी से वाद-विवाद न कीजिए। ईश्वर में जिनकी श्रद्धा न हो या जो आपकी साधनाओं की निन्दा करते हों, ऐसे लोगों से मिलना-जुलना बन्द कर दीजिए।

१४. सादा जीवन—अपनी आवश्यकताओं को कम कर दीजिए। सांसारिक सम्पत्ति को भी क्रमशः घटाते जाइए। 'सादा जीवन और उच्च विचार' का अवलम्बन कीजिए।

(५) हृदय-साधना

१५. परोपकार— दूसरों की कुछ भलाई करना यही परम धर्म है। प्रति-सप्ताह कुछ घण्टे कोई निष्काम सेवा का कार्य कीजिए। इन कामों में अभिमान या बदले की आशा न रखिए। अपने सांसारिक कर्त्तव्यों को भी इसी भावना से कीजिए। स्वधर्म और कर्त्तव्य-कर्म का ईश्वरार्पण बुद्धि से पालन करना भी एक प्रकार की पूजा ही है।

१६. दान—अपनी आय का दो से दस प्रतिशत तक दान कीजिए। आपको कोई भी अच्छी वस्तु मिले, उसको दूसरों में बाँट कर उपभोग कीजिए। सारे संसार के प्राणियों को अपना कुटुम्बी मानिए। स्वार्थ-वृत्ति का त्याग कीजिए।

१७. नम्रता—विनम्र बनिए। सब प्राणियों को मानसिक नमस्कार कीजिए। सर्वत्र ईश्वर के अस्तित्व का अनुभव कीजिए। मिथ्याभिमान, दम्भ और गर्व का त्याग कीजिए।

१८. श्रद्धा—गीता, गुरु और गोविन्द में अविचल श्रद्धा रखिए। सर्वदा ईश्वर को आत्मसमर्पण करते हुए प्रार्थना

कीजिए, 'हे प्रभो, जैसी तेरी इच्छा, वैसा ही हो। मैं कुछ भी नहीं चाहता।' सब परिस्थितियों या घटनाओं में ईश्वर-इच्छा को प्रधान समझ कर उसके अधीन हो जाइए।

१६. **सर्वात्मभाव**—सब प्राणियों में ईश्वर के दर्शन कीजिए और उनमें अपनी आत्मा के समान प्रेम-भाव रखिए; किसी से द्वेष न रखिए।

२०. **नाम-स्मरण**—सर्वदा ईश्वर का नाम-स्मरण करते रहिए या कम से कम प्रातःकाल सोकर उठने पर, व्यावहारिक कामों के बीच अवकाश मिलने पर और रात में सोने से पूर्व ईश्वर का स्मरण कीजिए। अपनी जेब में एक जप-माला रखिए।

(६) मानसिक साधना

२१. **गीता-ध्यान**—प्रतिदिन गीता का एक अध्याय या १० से १५ श्लोक तक अर्थ-सहित अध्ययन कीजिए। मूल गीता को समझने के लिए यथेष्ट संस्कृत सीख लीजिए।

२२. **गीता कण्ठस्थ करना**—धीरे-धीरे सारी गीता को कण्ठस्थ कर लीजिए। गीता की एक पुस्तक सदा अपनी जेब में रखिए।

२३. **स्वाध्याय**—रामायण, भागवत, उपनिषद्, योग-वाशिष्ठ या अन्य दर्शन-शास्त्रों या धर्मग्रन्थों का कुछ अंश प्रति-दिन अथवा छुट्टी के दिन अवश्य अध्ययन कीजिए।

२४. **सत्सङ्ग**—कथा, कीर्त्तन, सत्सङ्ग आदि में प्रत्येक अवसर पर जाकर उनसे लाभ उठाइए। रविवार या छुट्टी के

दिन ऐसे सम्मेलनों का आयोजन कीजिए।

२५. **मन्दिर-गमन**—किसी भी देव-मन्दिर या पूजा-स्थान में प्रति-सप्ताह कम से कम एक दिन जाकर जप, कीर्त्तन, व्याख्यान आदि की व्यवस्था कीजिए।

२६. **एकान्त-सेवन**—अवकाश या छुट्टी के दिनों में किसी पवित्र स्थान में जाकर एकान्त-सेवन कीजिए और सारा समय साधना में बिताइए। सन्त-महात्माओं का सत्सङ्ग कीजिए।

(७) आध्यात्मिक साधना

२७. **ब्राह्ममुहूर्त्त**—रात में जल्दी सोकर प्रातः काल चार बजे उठिए। शौच, दन्तधावन और स्नानादि से निवृत्त हो जाइए।

२८. **जप, प्रार्थना और ध्यान**—पद्मासन, सिद्धासन या सुखासन में बैठकर पाँच से छः बजे तक प्राणायाम, ध्यान, जप, स्तोत्र-पाठ, प्रार्थना और कीर्त्तन कीजिए। एक ही आसन में सारा समय बैठने का धीरे-धीरे अभ्यास कीजिए।

२९. **सन्ध्यापूजा**—अपनी दैनिक सन्ध्या, गायत्री-जप, नित्य-कर्म और पूजा कीजिए।

३०. **मन्त्रलेखन**—अपने इष्टमन्त्र या भगवान् के नाम को प्रतिदिन १० से ३० मिनट तक एक पुस्तिका में लिखिए।

३१. **सङ्कीर्त्तन**—रात्रि में स्वजन, मित्र आदि के साथ बैठकर आधा से एक घण्टा तक नाम-सङ्कीर्त्तन, स्तोत्र, प्रार्थना, भजन आदि का गायन कीजिए।

३२. **दैनन्दिनी**—उपर्युक्त प्रकार की साधना करने का सङ्कल्प कीजिए और प्रति-वर्ष नया सङ्कल्प करके साधना को बढ़ाते जाइए। नियमितता, दृढ़ता एवं तत्परता से इनका पालन करना आवश्यक है। साधना का समय, परिमाण आदि आध्यात्मिक डायरी में लिखिए। प्रति-मास उसकी समालोचना कर अपनी त्रुटियों को सुधारते रहिए।

बीस आध्यात्मिक उपदेश

१. नित्यप्रति चार बजे प्रातः उठिए। यह ब्राह्ममुहूर्त्त ईश्वर के ध्यान के लिए बहुत अनुकूल है।

२. **आसन :**—पद्म, सिद्ध अथवा सुखासन पर जप तथा ध्यान के लिए आध घण्टे के लिए पूर्व अथवा उत्तर की दिशा को मुख कर बैठ जाइए। ध्यान के समय को शनैः शनैः तीन घण्टे तक ले जाइए। ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य के लिए शीर्षासन अथवा सर्वाङ्गासन कीजिए। कोई हलका शारीरिक व्यायाम जैसे टहलना आदि नियमित रूप से कीजिए। बीस प्राणायाम कीजिए।

३. **जप :**—अपनी रुचि या प्रकृति के अनुसार किसी भी मन्त्र का जैसे—'ओ३म्', 'ओ३म् नमो नारायणाय,' 'ओ३म् नमः शिवायः,' 'ओ३म् नमो भगवते वासुदेवाय,' 'ओ३म् शरवणभवाय नमः,' 'सीताराम,' 'श्रीराम,' 'हरि ओ३म्' या गायत्री का १०८ से २१६०० बार प्रतिदिन जप कीजिए। (२०० मालाएं × १०८=२१६००)।

४. **आहार-संयम :**—शुद्ध सात्त्विक आहार कीजिए। मिर्च, इमली, लहसुन, प्याज, खट्टे पदार्थ, तेल, सरसों तथा हीङ्ग का त्याग कीजिए। मिताहार कीजिए। पेट पर बोझ न डालिए।

वर्ष में एक या दो बार एक पक्ष के लिए उस वस्तु का परित्याग कीजिए जिसे मन अधिक पसन्द करता है। सरल भोजन कीजिए। दूध तथा फल धारणा में सहायता पहुँचाते हैं। भोजन को जीवन-निर्वाह के लिए औषध के समान ही लीजिए। भोग के लिए भोजन करना तो पाप है। एक मास के लिए नमक तथा चीनी का परित्याग कीजिए। बिना चटनी तथा अचार के केवल चावल, रोटी तथा दाल पर ही निर्वाह करने की आप में क्षमता होनी चाहिए। दाल के लिए और अधिक नमक तथा चाय, काफी और दूध के लिए और अधिक चीनी न माँगिए।

५. **ध्यान-गृह :**—अलग ध्यान-गृह रखिए तथा उसे ताले-कुन्जी से बन्द रखिए।

६. **दान :**—प्रति-मास अथवा प्रतिदिन यथाशक्ति नियमित रूप से दान दीजिए अथवा एक रुपये में दस पैसे के हिसाब से दान दीजिए।

७. **स्वाध्याय :**—गीता, रामायण, भागवत, विष्णुसहस्रनाम, ललितासहस्रनाम, आदित्यहृदय, उपनिषद्, योगवाशिष्ठ आदि का आध घण्टे से एक घण्टे तक नित्य अध्ययन कीजिए तथा शुद्ध विचार रखिए।

८. **ब्रह्मचर्य :**—बहुत ही सावधानीपूर्वक वीर्य की रक्षा कीजिए। वीर्य विभूति है। वीर्य ही सम्पूर्ण शक्ति है। वीर्य ही सम्पत्ति है। वीर्य जीवन, विचार तथा बुद्धि का सार है।

९. प्रार्थना के कुछ श्लोकों अथवा स्तोत्रों को याद कर लीजिए। जप अथवा ध्यान प्रारम्भ करने से पहले उनका पाठ करना शुरू कीजिए। इससे मन शीघ्र ही समुन्नत हो जायगा।

१०. निरन्तर सत्सङ्ग कीजिए। कुसङ्गति, धूम्रपान, मांस, शराब आदि का पूर्णतः त्याग कीजिए। किसी भी बुरी आदत में न फँसिए।

११. एकादशी को उपवास कीजिए या केवल दूध तथा फल पर निर्वाह कीजिए।

१२. अपने गले में अथवा पाकेट में तथा रात्रि में तकिए के नीचे जपमाला रखिए।

१३. नित्यप्रति कुछ घण्टों के लिए मौनव्रत कीजिए।

१४. वाणी-संयम :– हर हालत में सत्य बोलिए। थोड़ा बोलिए। मधुर भाषण कीजिए।

१५. अपनी आवश्यकताओं को कम कीजिए। यदि आपके पास चार कमीज हैं तो इनकी संख्या तीन या दो कर दीजिए। सुखी तथा सन्तुष्ट जीवन बिताइए। अनावश्यक चिन्ता त्यागिए। सरल जीवन तथा उच्च विचार रखिए।

१६. कभी भी किसी को चोट न पहुँचाइए (अहिंसा परमो धर्मः)। क्रोध का प्रेम, क्षमा तथा दया से दमन कीजिए।

१७. सेवकों पर निर्भर न रहिए। आत्म-निर्भरता सर्वोत्तम गुण है।

१८. सोने से पहले दिनभर की अपनी गलतियों पर विचार कीजिए। आत्मविश्लेषण कीजिए। बेंजामिन फ्रैंकलिन के समान नित्यप्रति आध्यात्मिक डायरी तथा आत्म-सुधार रजिस्टर रखिए। भूतकाल की गलतियों का चिन्तन न कीजिए।

१९. याद रखिए कि मृत्यु हर क्षण आपकी प्रतीक्षा कर रही है। अपने कर्त्तव्यों को पूर्ण करने में विफल न बनिए। सदाचार रखिए।

२०. प्रातः उठते ही तथा सोने से पहले ईश्वर का चिन्तन कीजिए। ईश्वर पर पूर्ण आत्मार्पण कीजिए।

यही सारी आध्यात्मिक साधनाओं का सारांश है। इससे आप मोक्ष प्राप्त करेंगे। इन नियमों का अक्षरशः पालन करना चाहिए। अपने मन को ढीला न छोड़िए।

——*——

ॐ

सेवा प्रेम दान पवित्रता ध्यान साक्षात्कार

विश्व-प्रार्थना

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव!
तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है।
तुम सच्चिदानन्दघन हो।
तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो।
तुम सबके अन्तर्वासी हो।
हमें उदारता, समदर्शिता और मन का
समत्व प्रदान करो।

श्रद्धा, भक्ति और प्रज्ञा से कृतार्थ करो।
हमें आध्यात्मिक अन्तःशक्ति का वर दो,
जिससे हम वासनाओं का दमन कर
मनोजय को प्राप्त हों।

हम अहङ्कार, काम, लोभ और द्वेष से रहित हों।
हमारा हृदय दिव्य गुणों से पूर्ण करो।
सब नाम-रूपों में तुम्हारा दर्शन करें।
तुम्हारी अर्चना के ही रूप में
इन नाम-रूपों की सेवा करें।

सदा तुम्हारा ही स्मरण करें।
सदा तुम्हारी ही महिमा का गायन करें।
केवल तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम
हमारे अधर-पुट पर हो।
सदा हम तुममें ही निवास करें।

सबसे महान् दान — ज्ञान का दान

ज्ञान-यज्ञ

(आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार)

श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज मानवता की सेवा के लिए करीब पचीस साल तक इस महान् यज्ञ को करते रहे थे।

तथा उन्होंने आपको सुअवसर प्रदान किया जिससे कि आप ईश्वरीय कृपा, महिमा तथा आशीर्वाद को प्राप्त करें।

स्वामी जी की बहुत सी पुस्तकें अभी तक अप्रकाशित हैं। अपने धर्म-धन के द्वारा आप उन पुस्तकों में से किसी को भी अपने नाम से छपवा सकते हैं। लाखों इससे लाभ उठायेंगे।

एक पुस्तक को छपवाने में लगभग लगभग ५००) रु० से २०००) रु० तक व्यय होगा। विशेष जानकारी के लिए नीचे के पते पर लिखिए :—

महासचिव, दिव्य जीवन संघ, शिवानन्दनगर,
जिला टिहरी-गढ़वाल (उ० प्र०)।
पिन २४९१९२